को धनञ्जयजी को लेने के लिये भेज दिया और वे आ भी गये। उन्होंने पहुंचते ही एक आशीर्वादात्मक श्लोक पढ़ा, जिसे सुन कर सारी सभा के लोग और राजा भोज बहुत प्रसन्न हुए। राजा ने उन्हें बड़े मान सम्मान से बैठाया और कुशल प्रश्न के अनन्तर पूछा—

राजा—हमने आपको एक प्रसिद्ध विद्वान सुना है, परन्तु आश्चर्य है कि हमसे आप आज तक मिले नहीं?

धनञ्जय—(विहँस कर) कृपानाथ। आप पृथ्वीपति हैं, जब तक पुण्य का प्रबल उदय न हो तब तक आपके दर्शन लाभ क्या कर हो सकते हैं, आज हमारे धन्य भाग्य हैं, जो आपसे साक्षात करके मैं सफल मनोरथ हुआ हूँ।

राजा—आप इतने बड़े मानाङ्कित विद्वान हैं, फिर यह छोटा-सा ग्रन्थ आपको नहीं शोभता। अवश्य ही कोई महाग्रन्थ लिखा होगा या रचने का प्रारम्भ किया होगा?

यह सुन कर कालिदास से न रहा गया, वह बोले कि महाराज। नाममाला हम लोगों की है, इसका यथार्थ नाम नाममंजरी है, ब्राह्मण विद्वान ही इसके बनानेवाले हैं और ब्राह्मणों में ही ऐसी योग्यता होती है। ये बेचारे वणिक लोग ग्रन्थ रचना के मर्म को क्या जाने। यह बात विद्वान धनञ्जयजी को बहुत बुरी लगी और लगना ही चाहिए, क्योंकि दिन दहाड़े उनकी कृति पर हड़ताल फेरी जा रही थी, उन्होंने कहा कि हे महाराज! यह झूठ है, मैंने यह ग्रन्थ बालकों के पठनार्थ रचा है, यह बहुत से लोग जानते हैं और आप पुस्तक मगा कर देख लीजिये, जान पड़ता है कि इन लोगों ने मेरा नाम लोप करके अपना नाम रख लिया है और नाममंजरी बना ली है।

विद्या विशारद राजा भोज ने वह ग्रन्थ मगाया और स्वयं परीक्षा की पश्चात् अन्य विद्वान-मण्डली से समर्थन पाकर कालिदास से कहा कि तुमने यह बड़ा अनर्थ किया है, जो दूसरे की कृति को छिपा कर अपनी कृति प्रसिद्ध किया यह चोरी नहीं तो क्या है? इस पर कालिदास बोले कि महाराज। ये धनञ्जय अभी कल ही तो उस मानतुङ्ग के पास पढ़ते थे, जिसमें विद्या की गन्ध भी नहीं है, आज ये कहाँ से विद्वान हो गये जो ग्रन्थ रचने लग गये। उस मानतुङ्ग को ही बुला के हमसे शास्त्रार्थ करवा के देख लीजिये इनके पाण्डित्य की परीक्षा सहज में हो जावेगी।

गुरुदेव मानतुङ्गजी के विषय में ऐसे अनादर के वचन धनञ्जयजी को सहन नहीं हुए, वे कुपित होकर बोले कि कौन ऐसा विद्वान है जो स्वामी श्रीमानतुङ्ग के चरणों में विवाद कर सके? मैं देखूँ तुममें कितना पाण्डित्य है, पहले मुझसे शास्त्रार्थ कर लो पीछे गुरुवर का नाम लेना। बस। कालिदास को अपने ज्ञान का अभिमान भरपूर तो था ही

धनञ्जजी से शास्त्रार्थ छोड दिया और विविध विषयो पर परस्पर वाद-विवाद हुआ। स्वामीजी धनञ्जजी के उत्तर प्रत्युत्तर से निरुत्तर होकर कालिदास खिसिया गये और राजा से फिर वही बात बोले कि मै इनके गुरु मानतुङ्ग से शास्त्रार्थ करूँगा।

विद्वान धनञ्जय का पक्ष प्रबल है, यह बात यद्यपि महाराजा भोज समझ चुके थे, परन्तु कालिदास के सन्तोष के लिए और शास्त्रार्थ का कौतुक देखने के लिए उन्होने स्वामी श्री मानतुङ्ग के निकट अपना दूत भेज दिया। दूत वन मे गया और राजा की आज्ञानुसार स्वामीजी से निवेदन किया कि भगवन्। मालवाधीश महाराजा भोज ने आपकी प्रशंसा सुन कर दर्शन की अभिलाषा की है और दरबार मे बुलाया है, सो कृपा कर के चलिये। इसपर मुनिराज ने उत्तर दिया कि भाई। राजद्वार से हमे क्या प्रयोजन है? हम खेती नही करते, वाणिज्य नही करते और न किसी प्रकार की याचना करते है, फिर राजा हमे क्या बुलावेगा? परन्तु साधुओ को राजा से कुछ सम्बन्ध नही है और न हम उनके पास जाना चाहते है।

बेचारा दूत हताश होकर लौट पडा और मुनिराज ने जो उत्तर दिया राजा को सुना दिया। इसपर राजा ने फिर सेवक भेजे, परन्तु वे नही आये, इस प्रकार चार बार हुआ। पाँचवी बार कालिदास के उसकाने से महाराज क्रोधित हो उठे और अपने सेवको को आज्ञा दे दी कि जिस तरह हो सके उसे पकड के लाओ। कई बार के भटके हुए सेवक यह चाहते ही थे, तत्काल ही वे उन महात्माजी को पकड लाये और राज्य सभा मे खडा कर दिया।

उस समय स्वामीजी ने उपसर्ग समझ कर मौन धारण करके साम्यभाव का अवलम्बन कर लिया, राजा ने बहुत चाहा कि ये महानुभाव कुछ बोले, परन्तु उनके मुख से एक अक्षर भी नही निकला। तब कालिदास और अन्य द्वेषी ब्राह्मण बोले कि महाराज। यह कर्नाटक देश से निकाला हुआ यहाँ आके रहा है, महा मूर्ख है, राज सभा देख के भयभीत हो रहा है, आपका प्रताप नही सह सकने से कुछ बोलता नही है। इसपर बहुत लोगो ने मुनिराज से प्रार्थना की कि आप सन्त है, इस समय आपको कुछ धर्मोपदेश देना चाहिये, राजा विद्या विलासी है, सुन कर सन्तुष्ट होगे, परन्तु वे धीर वीर महासाधु, महामेरु की तरह अडोल हो गये। सब लोग कह-कह के थक गये, परन्तु फल कुछ नही हुआ। इसपर राजा ने क्रोधित होकर हथकड़ी बेड़ी डाल के उन्हे अडतालीस कोठरियो के भीतर एक बन्दीगृह मे कैद कर दिया और मजबूत ताले लगवा कर पहरेदार बैठा दिये।

* श्री आदिनाथाय नम *

श्री भक्तामर-कथा कोष

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानं ।
सम्यक्प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालंबनं भवजले पततां जनानाम् ॥ १ ॥

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः
स्तोष्येकिलाहमपितं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥ २ ॥

है भक्त-देव-नत मौलि-मणि-प्रभा के, उद्योतकारक विनाशक पाप के ह।
आधार जो भवपयोधि पडे जनो के, अच्छी तरह नम उन्ही प्रभु के पदा को । १ ॥

श्रीआदिनाथविभु की स्तुति मैं करूँगा, की देवलोकपतिने स्तुति ह जिन्हो की।
अत्यन्त सुन्दर जगत्त्रय चित्तहारी सुस्तोत्र से सकल शास्त्र-रहस्य पाके । २ ॥

भावार्थ—भक्तिमान् देवों के झुके हुए मुकुटों के मणियों की प्रभा को प्रकाशित करनेवाले, पाप रूप अन्धकार को दूर करनेवाले, ससार से डूबते हुए मनुष्यों को चौथे काल की आदि मे सहारा देनेवाले और द्वादशाग के पाठी इन्द्रों ने बडे-बडे त्रिजग मोहक स्तोत्रो के द्वारा जिन की स्तुति की है, उन प्रथम जिनेन्द्र की मैं स्तुति करता हू।

भक्तामर प्रणतमौलिमणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम्।
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम्॥१॥

१ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो अरिहन्ताण णमो जिणाण ह्रां ह्री ह्रू ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा ।

मन्त्र—ॐ ह्रां ह्री ह्रू श्री क्ली ब्लू क्रौं ॐ ह्री नम स्वाहा ।

विधि—पवित्र भावो के साथ प्रतिदिन ऋद्धि और मन्त्र को एक सौ आठ बार जपना चाहिये और यन्त्र को पास मे रखना चाहिये । इससे सब प्रकार के उपद्रव नष्ट होते है ।

यः संस्तुत सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः।
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥२॥

ॐ ह्रीं श्री क्लीं ब्लूं नमः
श्रीश्रीश्रीश्री
सकलार्थसिद्धिदाय
ॐ ह्रीं जिणाणं

२ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो ॐ ह्री जिणाण ।

मन्त्र—ॐ ह्री श्री क्ली ब्लू नम ।

विधि—काला वस्त्र पहिन के, काली माला लेकर पूर्व दिशा की ओर मुख कर के दण्डासन बैठ कर २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जाप करना चाहिये अथवा ७ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ।

ऋद्धि और मन्त्र का जाप करना चाहिये । नमक का होम करना और एक बार भोजन करना उचित है । इससे मस्तक की पीडा बन्द होती है और यन्त्र पास मे रखने से नजर बन्द होती है ।

सेठ हेमदत्त की कथा

उज्जैन नगर मे एक मुदत्त नाम का चोर रहता था, एक दिन कोतवाल ने उसे चोरी करते हुए पकड लिया और जब दरबार मे उपस्थित किया तो राजा ने कुपित होकर पूछा कि सच वतला तू चोरी का माल कहाँ रखता है ?

राजा की डाट के कारण चोर सोचने लगा कि किसी धनवान का नाम वतला दू गा तो राजा को वहुत धन लाभ होगा और मैं वच जाऊँगा। निदान डरते-डरते चोर ने वहा के प्रसिद्ध धनिक सेठ हेमदत्तजी का नाम वताया। राजा ने तुरन्त ही चपरासी के द्वारा आज्ञा-पत्र भेज कर सेठजी को वुलाया और कहा हम तुम्हे वडे ईमानदार समझते थे, परन्तु तुम्हारे व्रत उपवास जिन-पूजा आदि कोरे पाखण्ड है, वताओ इस चोर ने जो माल तुम्हे दिया है, वह कहा है ?

वेचारे सेठजी के प्राण सूख गये, वे हाथ जोड कर कहने लगे कि मैंने इसे आज ही देखा है, मैं इसे पहचानता तक नही हू। सेठजी का वक्तव्य समाप्त भी नही होने पाया था कि चोर बीच ही मे वोल उठा कि दयानिधान ! मुझ गरीब की रकम मारने की चेष्टा मत करो। उसने इस तरह से कहा कि राजा को पूरा विश्वास हो गया।

सेठ हेमदत्त ने बहुत विनय को और अपनी सच्ची बात सुनाई पर राजा को एक भी न जँची। उन्होने अपने सिपाहियो को आज्ञा दे दी कि सेठ हेमदत्त को भयङ्कर जङ्गल के अन्धकूप मे डाल दो, तब सिपाहियो ने वैसा ही किया।

पाठको! राजा ने मूर्खता तो कर डाली, परन्तु सेठ हेमदत्त ने धीरज नही छोडा, उन्होने प्रथम और द्वितीय मन्त्र की भक्ति-पूर्वक आराधना की। जिसके प्रभाव से विजयादेवी ने प्रगट होकर उन्हे अन्धकूप से निकाल लिया और बाहर एक सुन्दर सिंहासन पर बिराजमान कर आभूपणो से खूव सजा दिया। देवी ने सेठ हेमदत्त की वडी प्रशसा की और कहा कि तुम कहो तो मै राजा को अच्छी सजा दू। परन्तु उस धर्म धुरन्धर सेठ ने यही कहा कि इसमे राजा का दोष नही है, हमारा दुर्भाग्य ही इसमे कारण है। जब राजा ने ये समाचार सुने तो वे वहाँ तुरन्त दौडे गये और सेठ तथा देवी से क्षमा प्रार्थना की। देवी ने राजा को बहुत लज्जित किया और सोच विचार कर कार्य करने के हेतु बहुत कुछ उपदेश देकर अन्तर्द्धान हो गई। राजा ने जैन-धर्म अङ्गीकार किया और सेठजी को बडी श्रद्धा से घर लाये।

उस चोर को राजा ने फिर बुलवाया और कठिन दण्ड भोगने की आज्ञा दी। परन्तु कृपालु सेठ हेमदत्तजी के कहने से राजा ने उसे छोड दिया।

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥ ३ ॥

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशांककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

होवे वृहस्पति समान सुबुद्धि तो भी, है कौन जो गिन सके तव सद्‌गुणो को ।
कल्पान्तवायु-वश सिन्धु, अलध्य जो है, है कौन जो तिर सके उसको भुजा से ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे गुणसमुद्र ! वृहस्पति के समान बुद्धिमान मनुष्य भी आपके चन्द्रवत उज्ज्वल गुणों के कहने को समर्थ नहीं हो सकता भला, प्रलयकाल की पवन से लहराते और जिसमे मगरमच्छ उछलते हैं, ऐसे महासमुद्र को कौन मनुष्य अपनी भुजाओं से तैर सकता है ?

४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहि जिणाण ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं जल यात्रा देवताभ्यो नमः स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धि मन्त्र सफेद माला से ७ दिन तक प्रतिदिन १००० बार जाप करना, सफेद फूल चढ़ाना, दिन मे एक वार भोजन करना और पृथ्वी पर सोना । यन्त्र पास मे रख कर मन्त्र द्वारा एक-एक ककरी को सात-सात बार इसी तरह इक्कीस ककरियो को जल मे डालने से जाल मे मछलियाँ नही आती हैं ।

सेठ सुदत्तजी की कथा

मालवा प्रान्त की स्वस्तिमती नगरी मे एक सेठजी रहते थे, उनका नाम सुदत्तजी था। उनके यहा जवाहिरात का व्यापार था। जैन-धर्म और श्रावक के क्रिया कर्म मे वे बडे सावधान थे।

एक दिन सकल सयम के साधक जैन साधु विहार करते हुए आहार के लिये सेठ सुदत्तजी के घर के निकट से निकले तो सेठजी ने उन्हे विधिपूर्वक पडगाहा और भक्ति सहित आहार दिया। पश्चात् बडे नम्र भाव से प्रार्थना की कि मुझे कोई स्तोत्र सिखाइये जिससे आपकी स्मृति रहे और मेरा जन्म सफल होवे। कृपालु मुनिराज ने उसे ऋद्धि मन्त्र समेत आदिनाथ स्तोत्र के तीसरे, चौथे युगल काव्य सिखा दिये।

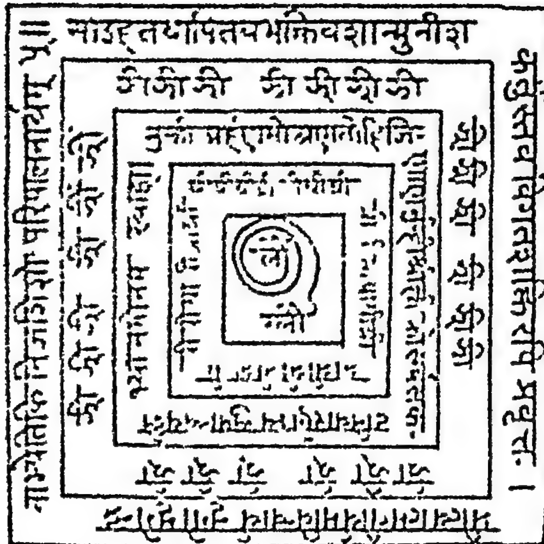
थोडे ही दिनो के पश्चात् सेठ सुदत्तजी जहाजो मे व्यापार की बहुत सी सामग्री लदवा कर कई व्यापारियो के साथ रतनद्वीप को चल दिये। आधी दूर भी नही गये थे कि समुद्र मे वडा भारी तूफान आया और जहाज डगमगाने लगे। लोग बडे ही घबराये और सबको प्राणो की पड़ गई, नाना चेष्टाएँ की, परन्तु जहाज थामना असम्भव दिखने लगा। अन्त मे विद्वान सेठ सुदत्तजी ने पञ्च नमस्कार मन्त्र स्मरण करके भक्तामर के तृतीय और चतुर्थ काव्य जपे। उसके प्रभाव से प्रभावती देवी प्रगट हुई और सबके जहाज किनारे पर आ गये। देवी ने सेठजी की वडी प्रशसा की और रत्नजटित एक चन्द्रकान्ति-मणि भेट करके चली गई, चलते समय यह कह गई कि कभी आवश्यकता पडे तो याद करना।

सेठ सुदत्तजी मण्डली समेत सकुशल रतनद्वीप पहुँच गये। अपनी सामग्री बेच तथा वहा की सामग्री खरीद कर लौट पडे।

रास्ते मे एक बन्दरगाह (जहाजो के ठहरने का स्थान) के किनारे पर ठहरे। वहा पास ही मे एक जिन-मन्दिर था, उसमे जाकर सेठजी ने अष्ट द्रव्य से जिन-पूजा की, मन्दिर के पास ही एक गुफा मे एक तापस रहता था। वह महा हत्यारा व मास का लोलुपी था। कहने लगा कि, यहा सब लोग महिषा की बलि दिया करते है, तुम भी दो, नही तो तुम्हारे प्राणो की कुशल नही है। दयालु सेठ सुदत्त ने उस नीच अधम से कहा कि महाशय! जो भी हो, हम हिंसा नही करेगे। महिषा गूगल को भी कहते है, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हम मगवा देवे। यह सुन कर वह धूर्त और भी क्रोधित हुआ, तब सेठ सुदत्तजी ने राजा यशोधर का दृष्टान्त दिया कि उन्होने मात्र तिल्ली का बकरा बना के चढाया था, जिसके कारण सात भव तक कुगति मे पडे रहे। यह धर्मोपदेश उस पापी को बिलकुल न जचा और वह लाल होकर सेठजी पर एकदम टूट पडा।

ऐसी घोर अधार्मिक विपदा देख सेठ सुदत्तजी ने वे ही युगल काव्य पढ कर देवी को चितारा। तुरन्त ही प्रभावती दवी ने प्रगट होकर उस तापस का गला पकड लिया तब तो बेचारा लाचार हुआ और त्राहि-त्राहि कर सेठजी के चरणो पर गिर पडा। अन्त मे 'अबसे हिंसा नही करूँगा' ऐसा वचन लेकर देवी तो अदृश्य हो गई और सेठ सुदत्तजी सकुशल अपने घर पहुँचे।

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम ॥५॥



देवल बढई की कथा

कोकन देश मे सुभद्रावती नगरी थी। वहा के राज्यमन्त्री के यहा सोमकान्ति नाम का एक वालक था। सात वरस की अवस्था ही मे वह पाठशाला मे पढने को जाने लगा, अल्प समय मे वह व्याकरण, काव्य, न्याय और धर्म-शास्त्र मे प्रवीण हो गया।

एक दिन उस महारूपवान सोमकान्ति ने वहुत से लडको को गेद खेलते देखा और उसका भी खेलने को जी हो आया। निदान एक लडके का डण्डा माग कर खेलने लगा, दुर्भाग्य से खेलते-खेलते वह डण्डा टूट गया। वेचारा सोमकान्ति वहुत ही लज्जित हुआ और उस डण्डेवाले लडके से पूछने लगा कि वताओ तुम डण्डा कहाँ से लाया करते हो ? हम भी तुम्हे ला देवे। लडको ने देवल वढई का घर वता दिया, सोमकान्ति उसके घर गये, वढई ने डण्डे का दाम ले लिया, दूसरे दिन तैयार कर रखने को कह दिया।

सवेरा होते ही सोमकान्ति पाठशाला मे तो गया, परन्तु वढई के यहाँ से डण्डा लाने की चिन्ता लगी रही, इसलिये वह वीच ही मे भोजन के वहाने छुट्टी लेकर देवल के घर चला गया, हाथ मे भक्तामरजी की पुस्तक लिये हुए था, उसे देख कर वढई वोला—

वढई—यह हाथ मे क्या लिये हुए हो ?

वालक—जैन-धर्म का पवित्र ग्रन्थ भक्तामरजी है।

वढई—थोडा-सा मुझे भी पढ कर सुनाओ।

(बालक पाचवाँ काव्य ऋद्धि मन्त्र समेत पढ देता है।)

वढई—इस मन्त्र का क्या फल है ?

वालक—यह मन्त्र मनवाँछित फल का दाता है।

वढई—तव तो आप हमारे ऊपर कृपा करो और मुझे विधिपूर्वक सिखा दो।

वालक—पहिले तुम श्रावक के व्रत लो पीछे मन्त्र सीखो। वढई ने श्रावक के व्रत और जैन-धर्म अङ्गीकार करके मन्त्र सीख लिया और दो डण्डे ला कर एक उस लडके को देकर दूसरे से आप खेलने लगा।

एक दिन वढई वन की गुफा मे गया, पवित्र अङ्ग होकर सीखा हुआ काव्य मन्त्र सिद्ध किया, जिसके प्रसाद से सिंह पर वैठी, हाथ मे भयङ्कर सर्प लिये अजिता देवी प्रगट हुई।

देवी—हे वत्स! तू ने किस लिये मेरा आराधन किया है? तेरी जो कुछ इच्छा हो सो माग।

वढई—मैं दरिद्र हूँ ऐसी कृपा करो, जिससे धन लाभ हो।

देवी—देख! यहा से ईशान कोन मे वह पीपल का झाड है, उसके नीचे अटूट धन गडा है, तू खोद लेना।

देवी तो स्वर्ग-लोक को चली गई और वढई वहाँ से करोडो की मालियत हीरा आदि जवाहिरात खोद लाया और खाने खर्च मे आनन्द करने लगा, धन सम्पन्न होकर उसने जिन मन्दिर बनवाये और जिन-पूजा, दान, पुण्य आदि मे वहुत यश प्राप्त किया।

लोगो को वहुत आश्चर्य हुआ और उन्होने राज्य दरबार में चरचा की कि जो सौभाग्य राजा को प्राप्त नही है, वह देवल नाम के 'काष्ठकार' को प्राप्त है। राजा ने देवल को बडे सन्मान से बुलाया और सव हाल सुन कर वहुत प्रसन्नता प्रगट की।

जैसे दिन देवल के फिरे भगवान सवके फेरे।

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किलमधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतु ॥ ६ ॥

हूँ अल्पबुद्धि, बुधमानव की हँसी का हूँ पात्र, भक्ति तव है मुझको बुलाती ।
जो बोलता मधुर कोकिल है मधु मे, है हेतु आम्रकलिका बस एक उसका ॥ ६ ॥

भावार्थ—मैं मन्द ज्ञानी हू और विद्वानों के समक्ष हास्य का पात्र हूँ तो भी आपकी भक्ति, स्तोत्र रचने के लिये मुझे बाध्य करती है। कोयल बसन्त मे जो मीठी वाणी बोलती है, उसमे आम के वृक्षों का सुन्दर मौर ही कारण है।

६ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठबुद्धीण ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रां श्रीं श्रूं श्रः हं सं थः थः थः ठः ठः सरस्वती भगवती विद्या प्रसादं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—लाल वस्त्र पहिन कर २१ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप करने और यन्त्र पास रखने से बहुत शीघ्र विद्या आती है। बिछुडा हुआ, आ मिलता है। इस विधि मे फूल लाल हो, धूप कुन्दरू की देवे, पृथ्वी पर सोना और एक भुक्ति करना चाहिये ।

राजपुत्र भूपाल की कथा

भारतवर्ष मे काशी नगर जगत् विख्यात है, परम पूज्य भगवान पार्श्व और सुपार्श्व प्रभु की जन्म-भूमि होने से परम पवित्र है। राजा का नाम हेमवाहन था, राजा जैन-धर्मावलम्बी थे। पुण्योदय से उनके दो पुत्र हुए, मानो उनके घर मे सूर्य, चन्द्र ही अवतरे अथवा जिन भाषित निश्चय और व्यवहार उभयनय ही प्रगट हुए, वडे का नाम भूपाल और छोटे का भुजपाल था।

ये वालक जव पढने योग्य हुए तब राजा ने श्रुतधर पण्डित को वुलाया और धन मान से विभूषित करके दोनो बालक विद्याध्यन के लिये सौप दिये। यद्यपि गुरु का विद्यादान दोनो को समदृष्टि से था, परन्तु वड़े पुत्र भूपाल को विलकुल सफलता नही हुई। हा! लघु पुत्र भुजपाल पिंगल, व्याकरण, तर्क, न्याय, राज्यनीति, सामुद्रिक ज्योतिष, वैद्यक, शस्त्र, शास्त्र आदि सभी विद्याओ में प्रवीण हो गया।

गुरुजी, ज्येष्ठ राजकुमार भूपाल के साथ बहुत पढते थे और वह भी स्वयं बहुत परिश्रम करता था, परन्तु मूर्ख ही रहा। कहा भी है—

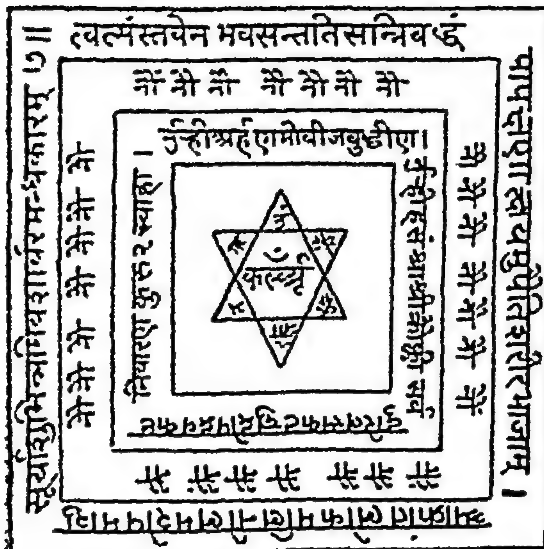
दोहा—विद्या, विभव, सतङ्ग, कुल और सुजस संसार।
दिये विना नहिं पाइये, बडे रतन में चार॥
शास्त्र दान दीनौं नहीं, किमि उचरै मुख बैन।
पुनि विद्या पावै कहा, खर सम चितवै नैन॥

अपढ रहने से भूपाल कुमार का जहाँ-तहाँ अनादर होता था। राज दरवार, कुटुम्ब परिवार की उसपर हास्यप्रद श्रद्धा रहती थी।

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोक मलिनीलमशेषमाशु
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥ ७ ॥

तेरी किये स्तुति विभो । बहु जन्म के भी, होते विनाश सब पाप मनुष्य के है ।
भौंरे समान अति श्यामल ज्यों अन्धेरा, होता विनाश रवि के कर से निशा का ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे प्रभु ! जिस प्रकार सूर्य्य की किरणों से, सम्पूर्ण लोक में व्याप्त, भौंरा समान काला, रात्रि का अन्धकार अति शीघ्र मिट जाता है। इसी प्रकार आपके स्तवन से जीवों के ससार परम्परा से बधे हुए पाप क्षण भर मे नाश हो जाते हैं ।



७ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीज बुद्धीण ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं हं सं श्रां क्रों क्लीं सर्वदुरित सङ्कट-क्षुद्रोपद्रव कष्ट निवारण कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—हरे रङ्ग की माला से २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपने और यन्त्र गले मे बांधने से सर्प का विष उतर जाता है तथा किसी प्रकार का विष नही चढ़ता । इसके सिवाय ऋद्धि मन्त्र द्वारा १०८ बार ककरी मन्त्रित करके सर्प के सिर पर मारने से सर्प कीलित हो जाता है। इस विधि मे माला हरी और धूप लोभान की हो ।

श्रेष्ठिपुत्र रतिशेखर की कथा

पटना नगर में राजा धर्मपाल राज्य करते थे वे बड़े ही न्याय शील और धर्मात्मा थे। उसी शहर में बुद्ध नाम के एक धनाढ्य सेठ रहते थे, सेठजी के एक रतिशेखर नाम का पुत्र था, वह बड़ा ही रूपवान और विनयवान था. श्रीमती नाम की अर्जिका के पास उसने कुछ विद्याध्ययन किया था। व्याकरण कोष सिद्धान्त और मन्त्र यन्त्र में रतिशेखर ने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी।

पटना नगर के बाहर एक भेषी तपस्वी रहता था। वह महामिथ्याती पाखण्ड और चरित्रहीन था। उसने कुछ कुदेवों की आराधना कर रक्खी थी. इसलिये पटना नगर में मन्त्र विद्या में उसकी ख्याति हो गई थी यहां तक कि राजा धर्मपाल भी उसकी सेवा में रहते थे और बड़ी विनय-सुश्रूषा किया करते थे। उस पाखण्डी का नाम बृलिंग था। चेला-चांटी भी उसके पास एक दो रहा करते थे।

एक दिन उस मिथ्यादृष्टि का एक शिष्य लोभी कुछ लालची चेला को उक्तिशाला वहां से निकला कि जहां रतिशेखर कुमार मन्दिर में विद्याध्ययन करते थे। रतिशेखर ने इस कुसाधु भेषधारी चेला की बात भी पूछी- तिसपर उसे बहुत बुरा लगा।

ज्योंही वह अपने तपस्वी गुरु के पास गया त्योंही रतिशेखर के विरुद्ध बहुत-सी उल्टी सीधी बनाई कि रतिशेखर ने हमारा बड़ा अनादर किया है इस पर वह कुसाधु बड़ा कुपित हुआ और वैताली विद्या से एक देवी को बुला कर उसे रतिशेखर को मारने को भेजा, देवी वहां तक गई तो अवश्य परन्तु महाजिन-धर्मी उस बालक के

पुण्य के आगे वह कापने लगी और लौट कर तपस्वी से कहते लगी।

देवी—अरे मूर्ख ! यह जैन-धर्मी है, उसके मारने को मै वा तू समर्थ नही है. अगर वह करुणानिधान बालक आज्ञा देवे तो मैं तेरा ही सर्वनाश करने के लिये तत्पर हूँ।

तपस्वी—हाथ जोड कर, माता ! रोष मत करो, कमसे कम इतना तो करो कि, रतिशेखर के घर पर धूल बरसाओ।

देवी रतिशेखर के घर गई और—

चौबोला—रतिशेखर मन्दिर के ऊपर, भई धूर बहु वृन्दा।
दशों दिशा छाई धूरासों, दुरे गगन गन चन्दा॥
रुक्यो प्रात सामायक कारण, रतिशेखर यों देखै।
चहूँ ओर है अति अंधियारी, बरसत धूर विशेखै॥

यह हाल देख कर घर के लोग तो बडे घबराये, परन्तु वह धीर-वीर रतिशेखर जान गया कि यह करतूत उसी कुलिंगी की है। वह नदी किनारे गया और स्नान आदि से शुद्ध हो करके सातवे काव्य मन्त्र की आराधना शुरु कर दी, जिससे 'जम्भादेवी' प्रसन्न हुई और वेताली के ऊपर दौडी गई। कहने लगी, अरी राड ! जैनमती को त्रास देती है ! फिर क्या था वेताली वहा से भाग गई, पर उसी नीच साधु के ऊपर धूल वृष्टि करके कहने लगी—

चौपाई—अरे दुष्ट पठई मुहि कहा, मान भङ्ग मेरो भयो जहा।
अब मैं तहते भागी आय, तोहि जमालय देहु पठाय॥
तू रतिशेखर के ढिग जाय, जंभासो सब क्षमा कराय।

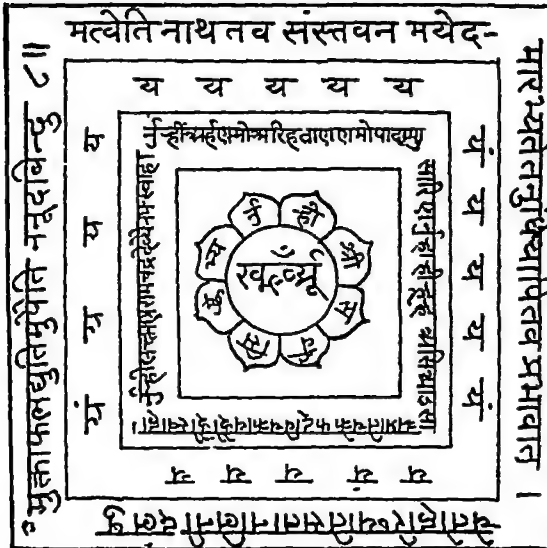
निदान वेताली के कहने से वह तापसी रतिशेखर के घर गया, जहा जम्भा देवी प्रगट बैठी थी। बारम्बार विनय स्तवन करके

तापसी ने रतिशेखर से क्षमा प्रार्थना की और श्रावक के व्रत अङ्गीकार किये, राजा ने भी जैन-धर्म ग्रहण किया । पश्चात् देवी स्वर्ग-धाम को चली गई ।

देखो, जैन-धर्म के प्रसाद से एक बालक ने ही उस जोगी को पापो से बचा लिया ।

मत्वेति नाथ ! तवसंस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥ ८ ॥

यो मान कर स्तुति शुरू की मुझ अल्पधी ने, तेरे प्रभाववश नाथ । वही हरेगी ।
सल्लोक के हृदय को, जल-बिन्दु भी तो मोती समान नलिनीदलपै सुहाते ॥ ८ ॥



८ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो अरिहन्ताण णमो पादाणु सारिण ।

मन्त्र—ॐ ह्रां ह्री ह्रू ह्र अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा । ॐ ह्री लक्ष्मण रामचन्द्रदेव्यै नम स्वाहा ।

विधि—अरीठा के बीज की माला से २१ दिन तक १००० जाप करने और यन्त्र पास मे रखने से सब प्रकार का अरिष्ट दूर होता है तथा

नमक को [illegible] इसी मंत्र से एक एक को एक बार मंत्रित करके किसी पीडित अङ्ग को [illegible] से पीड़ा मिट जाती है। इस विधि में धूप गुग्गल की हो और नमक की [illegible] रखना चाहिये।

भावार्थ—हे नाथ! पानी की छोटी-सी बूंद कमलिनी के पत्र पर पड़ने से मोती की शोभा को प्राप्त होती है, उसी प्रकार यद्यपि मैं तुच्छ बुद्धि हूं तो भी यह आपका स्तोत्र आपके प्रभाव से सज्जनों के चित्त को हरण करेगा।

सेठ धनपाल की कथा

कच्छ देश में एक वसन्तपुर नगर था, वहां एक धनपाल नाम का वैश्य रहता था, वह बडा धर्मात्मा और पापभीरु था। उसकी स्त्री गुणवती पूरी गुणवती थी, परन्तु धन सन्तान के अभाव मे बेचारे ये दोनों दुखी रहते थे।

भाग्यवशात एक दिन चन्द्रकीर्ति और महिकीर्ति मुनि युगल विहार करते हुए सेठ धनपाल के दरवाजे से निकले। उसने उन्हे आदरपूर्वक पडगाहा और नवधा-भक्तिपूर्वक आहार दिया। ठीक ही है, समदर्शी जैन मुनि सधन निर्धन सभी का घर पवित्र करते है।

निःअन्तराय आहार देने के पश्चात् सेठ की धर्म-पत्नी ने मुनिराज से विनयपूर्वक पूछा कि स्वामी! मुझे कर्म ने दोनो प्रकार से मारा है, प्रथम तो निर्धनता पीस रही है, दूसरे सन्तान हीनता से दुखित रहती हूँ, सो स्वामिन्! ऐसी कृपा करो कि दो मे से एक भी तो कष्ट निवारण हो। कृपालु मुनिराज ने श्रीभक्तामरजी का नौवा काव्य, मन्त्र विधि समेत सेठ धनपाल को सिखा कर प्रस्थान किया—

एकान्त स्थान मे तीन दिन रात पर्यंक-आसन से सेठ धनपाल

ने मन्त्र की आराधना की तो महिदेवी ने प्रगट होकर कहा—

देवी— चौपाई

अहो साध मैं पूछौं तोहि, किहि कारण आराधी मोहि।
इच्छा होय सो पूरन करौं, जन्म-जन्म के दुःख सब हरौं॥ १॥

धनपाल— चौपाई

कहै धनपाल सुनो हो माय, धन कारन आराधी आय।
जो मुझ माय कृपा अब करो, तो मेरो दुःख दारिद्र हरो॥ १॥

देवी— चौपाई

पूजा करो जिनेश्वर तनी, दिन प्रति सम्पति वाढै घनी।
पूजा तें हो लक्ष अपार, और सुयश वाढै संसार॥ १॥

देवी ने जिन-पूजा का उपदेश करके और देवोपुनीत एक सुन्दर सिंहासन भेट करके देवलोक को चली गई और सेठ धनपालजी जिन-पूजा मे त्रिकाल रहने लगे।

दोहा—महामन्त्र परभावतैं, भई लक्ष घर माहिं।
दिन-दिन वाढत चन्द्रसम, यामे सशय नाहिं॥

जब वहा के राजा सिद्धिधर ने सुना कि जो नाम का तो धनपाल था, पर निरा धनहीन था, वह वडा ही धनाढ्य हो गया है, तब वे वडे विस्मित हुए। एक दिन वे स्वयम् सेठ धनपालजी के घर गये, देवी द्वारा भेट मे प्राप्त सिंहासन देख बडे प्रसन्न हुए, राजा के कहने पर सेठ धनपाल ने सिंहासन पर श्री जिनेन्द्र की पूजा की तो पुनः महादेवी नृत्य करती हुई प्रगट हो गई, जिसे देख कर राजा को जैन-धर्म पर दृढ विश्वास हो गया। देवी जैन-धर्म को सर्वोपरि कहके देवलोक को चली गई और राजा ने प्रजा समेत जैन-धर्म को अङ्गीकार किया।

आस्तां तवस्तवनमस्तसमस्तदोषं,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥ ९ ॥

निर्दोष दूर हो तव स्तुति का बनाना, तेरी कथा तक हरे जग के अघो को ।
हो दूर सूर्य, करती उसकी प्रभा ही, अच्छे प्रफुल्लित सरोजन को सरो मे ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे भगवन्! सूरज तो दूर रहो, उसकी प्रभा ही तालाब के कमलों को विकसित कर देती है। उसी प्रकार आपका निर्दोष स्तोत्र तो दूर रहो, आपकी इस परभव सम्बन्धी कथा ही जगजीवों के पापों को दूर करती है।



९ ऋद्धि—ॐ ह्रीं णमो अरहन्ताण णमो सभिण्ण सोद हा ह्रीं ह्रू फट् राण स्वाहा ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्रौं क्ष्वीं र र ह ह नम स्वाहा ॥

विधि—चार ककरी एक सौ आठ बार मन्त्र कर चारो दिशाओ मे फेकने से रास्ता कीलित हो जाता है। कोई भी प्रकार का भय नही रहता चोर चोरी, नही कर पाता ॥

महारानी हेमश्री की कथा

कामरू देश की भद्रा नगरी मे राजा हेमब्रह्म रहते थे, उनकी आज्ञाकारिणी भार्या का नाम हेमश्री था, वे उभय दम्पति जैन-धर्म के सच्चे श्रद्धानी और नीतिपरायण थे ।

एक दिन ये दोनो वन-क्रीडा को गये, वहा एक वीतरागी महामुनि के दर्शन किये ।

चौपाई—भक्ति सहित गुरु की स्तुति करी, जनम सफल मानो तिहि घरी ।
धन्य भाग्य गुरु दर्शन दयो, मेरो पाप जनम को गयो ॥

महाराज हेमब्रह्म और तो सब प्रकार से सम्पन्न थे, परन्तु सन्तान के अभाव मे सदा व्याकुल रहते थे, इसलिये दोनो राजा और रानी ने मुनिराज से निवेदन किया ।

राजा— चौपाई

जब देखों काहू को बाल, तब मेरे मन उपजै शाल।
यह दुःख वचतें कहो न जाय, किये कौन अघ हम मुनिराय ॥

मुनि— चौपाई

श्री अरहन्त देव नहिं जान, जिन गुरु की मानी नहिं आन ।
अरु सिद्धान्त शास्त्र नहिं सुने, सन्तति होय न तेही गुने ॥ १ ॥
पुष्पवती जो नारी होय, श्री जिन-मन्दिर पहुचे सोय ।
अपनो धरम गमावै जोय, सन्तति मुख देखै नहिं कोय ॥ २ ॥
जो पशु पछी जीव अपार, तिनकी दया न कीनी सार ।
पजे जाय कुदेवन पाय, यातैं पुत्र बिहू ने थाय ॥ ३ ॥

नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ ।
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननुतेन किंवा
सत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥



मन्त्र—जन्म सद्भावतो व मर्त्यलोकं भूत व दिव्योद्योता-भक्तानादे प्रत्यक्ष क्षुद्रशान्तो ॐ ह्रीं ह्र ह्रा ह्रो प्र क्षू ऽ सिद्धबुद्धकृतार्थो भव भव वषट् सम्पूर्णं स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धि मन्त्र को आराधना से तथा यन्त्र पास मे रखने से कुत्ते का विष उतरता है और नमक की ७ डली लेकर प्रत्येक को १०८ बार मन्त्र कर खाने से कुत्ते के विष का असर नहीं होता । धूप कुन्दरू की हो । ७ या १० दिन तक १०८ बार जपना चाहिये ।

श्रीदत्त वैश्य की कथा

पूर्व बङ्गाल मे सुभद्रा नाम की महानगरी थी, वहा एक श्रीदत्त नामक वैश्य रहता था, वह धन के अभाव मे दरिद्र था।

एक दिन सकल संयमधारी मुनिराज आहार के लिये उस नगर मे पधारे, वहा के राजा नरवाहन ने भक्तिपूर्वक आहार दिया, मुनि महाराज आहार करके जा रहे थे कि उस श्रीदत्त नाम के वैश्य ने उन महात्माजी के चरण पकड लिये और कहने लगा—

चौपाई—मैं परदेश फिर्यो चिरकाल, द्रव्य हेतु भटक्यौ बेहाल।
पथ माहि मोकों भय लगै, देहु मन्त्र जासों भय भगै ॥ १ ॥

तब उन कृपालु मुनिराज ने सर्व भयभञ्जन १० वा काव्य उसे सिखा दिया और बिहार कर गये।

श्रीदत्त वणिक मण्डली समेत परदेश को जा रहा था कि—

चौपाई—चलत पथ भूलौ वह जाय, परौ भयानक वन में आय।
एक सिंह तहं पहुंचौ जाय, क्षुधित महा बहु विधि विललाय ॥ १ ॥
गरजै शब्द करै विकरार, गजगनकौ मद भञ्जन हार।
जम सम आवत देखौ जबै, विह्वल भगे सकल जन तबै ॥ २ ॥
सुमरो काव्य मन्त्र तिहि वार, श्री जिनवर आदीश्वर सार।
सुमरत सिंह भगौ ततकाल, छिन में नाश भयो वह शाल ॥ ३ ॥

सङ्कट तो कट गया, परन्तु वे लोग रास्ता भूल गये और बडे ही आकुलित हुए। तब श्रीदत्त ने पुनः मन्त्र स्मरण किया और उसके प्रभाव से एक जिन चैत्यालय दिखाई दिया, उसकी ओर चलते-चलते ठिकाने लग गये, वहा पहुँच कर भावपूर्वक जिन वन्दना की।

चैत्यालय के पास मे एक योगी बैठा हुआ था, सो इन्हे देख कर वह कहने लगा।

योगी—तुम कौन हो ? क्यो और कहा से आये हो ?

श्रीदत्त—मैं सुभद्रनगर निवासी श्रीदत्त नाम का वैश्य हूँ। दारिद्रजन्य दुःख मे दुःखित, धन की खोज मे निकला हूँ।

योगी—यहा थोडी दूर रसकूप है उस रस को तावे पर डालने से वह कञ्चन हो जाता है। तू चल उसमे ने हम रस निकलवा देगे और बरावर बाट लेगे।

श्रीदत्त—अच्छा महाराज चलिये। (दोनो जाते है)

योगी ने एक चौकी पर बैठा के चारो कोनो पर रस्सी बाध के और साथ मे रीती तुम्बी दे के श्रीदत्त को कुएँ मे उतार दिया। तुम्बी भर कर श्रीदत्त ने खीचने को कहा और योगी ने तुम्बी खीच ली। पश्चात् दूसरी तुम्बी लटका के योगी ने आवाज दी कि एक तुम्बी और आने दो श्रीदत्त ने वह भी भर दी। पश्चात् चौकी पर श्रीदत्त को बैठा के खीचता जाता है और आप विचारता है कि आधा रस इसे देना पडेगा, इसलिये रस्सिया काट के योगी रफुचक्कर हो गया और वेचारा श्रीदत्त धडाम से कुएँ मे गिर पडा।

विपत्ति के मारे श्रीदत्त ने काव्य का जाप करके देवी का स्मरण किया। तत्काल देवी दौडी आई और श्रीदत्त को उस महाकूप से निकाल कर बडे सन्मान के साथ बहुत-सा द्रव्य देकर घर को बिदा किया और आप देव लोक को चली गई।

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युति दुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत् ॥११॥



११ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेयबुद्धीणं ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ध्रां ध्रीं कुमतिनिवारिणि महामायायै नमः स्वाहा ।

विधि—स्नान करके पवित्र वस्त्र पहिन और दीप, धूप, नैवद्य, फल लिये प्रसन्न चित्त से खड़े होकर सफेद माला से १०८ बार जपने से और यन्त्र पास रखने से जिस इन्सान की इच्छा हो वह आ सकता है। लाल माला से २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपने से भी उपर्युक्त फल होता है। इस विधि में धूप कुन्दरु की होना चाहिये।

राजपुत्र तुरग की कथा

जिस समय की यह कथा है, उस समय रतनावतीपुरी मे राजा रुद्रसेन राज्य करते थे, उनकी प्राण प्यारी भार्या का नाम सुधर्मा था। उनके एक पुत्र था, उसका नाम तुरङ्गकुमार था।

प्रिय तुरङ्गकुमार ने कावेरी नदी के किनारे एक अति रमणीय बगीचा बनवाया था। उसकी मनोहर क्यारिया, हरे-हरे अकुर, रङ्गविरगे फूल और स्वादिष्ट फल, नन्दन वन की समता करते थे, जहा-तहा विश्राम भूमि और चित्रशालाएँ कुवेर की कृति का दिग्दर्शन कराती थी। यह सब था, परन्तु 'सौ गुन पै एक औगुन फीको' वाली वात थी, वह यह कि उस वाग मे जो वावडी थी, उसका पानी वहुत ही खारा था, मानो उसका झरना सीधा 'लवण समुद्र' से ही लग रहा था। उन्होने मन्त्र, जन्त्र, तन्त्र, होम, आराधन आदि अनेक उपचार किये, किन्तु सफलता नहीं हुई। बिचारे तुरङ्गकुमार को इस वात का वडा ही दुःख रहता था और दिन रात इसी चिन्ता से चिन्तित रहते थे। पुत्र की इस चिन्ता से महाराज रुद्रसेन और उनकी शील धुरन्धर भार्या सुधर्मा सती को अहो रात्रि वडा खटका लगा रहता था। एक दिन वे स्वामी चन्द्रकीर्ति मुनि की वन्दना को गये।

अडिल्ल—वन्दे शीश नमाय, पाय मुनि राय के।
कर नमोस्तु त्रयवार, चरन लव लाय के॥
धरम वुद्धि मुनिराय, दई भूपाल को।
समाधान सब पूछि, वाल गोपाल को॥ १ ॥

मुनिराज ने तुरङ्गकुमार को भी उस मन्त्र की विधि बतला दी, जिसको उसने साहसपूर्वक आराधन किया तो वन देवी ने प्रगट होकर कहा कि हे वत्स ! तेरी क्या इच्छा है ? तुरङ्गकुमार ने कहा मेरी बावडी का पानी मीठा बना रहे, देवी एवमस्तु कह के अन्तरध्यान हो गई।

सारांश मन्त्र के प्रसाद से विष भी अमृत हो जाता है, फिर पानी का मीठा हो जाना तो साधारण बात है।

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं ।
निर्मापित स्त्रिभुवनैकललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥ १२ ॥

यै शान्तरागरुचिभि परमाणुभिस्त्व

नमो भगवते

१२ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वाहिबुद्धीणं।

मन्त्र—ॐ आं आं अं अः सर्व राजा प्रजा-प्रजा मोहिनी सर्व जनवश्य कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—यन्त्र पास रखना और १०८ बार उक्त मन्त्र द्वारा तेल मन्त्रित करके हाथी को पिलाने से उसका मद उतर जाता है। ४२ दिन तक प्रति-दिन १००० जाप लाल माला से करना चाहिये और धूप दशांगी हो।

जो शान्ति के सुपरमाणु प्रभो। तनू मे तेरे लगे, जगत् में उतने वही थे।
सौन्दर्यसार, जगदीश्वर, चित्तहर्ता, तेरे समान इससे नहिं रूप कोई ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे त्रैलोक्य शिरोमणि भगवान्! जिन शान्त भावों की छायारूप परमाणुओं से आप रचे गये हैं, वे परमाणु उतने ही थे। क्योंकि आपके समान रूप पृथ्वी मे दूसरा नहीं है।

मन्त्री पुत्र महीचन्द की कथा

अहल्यापुर नगर मे राजा कुमारपाल रहते थे, उनके राज्य मन्त्री का नाम विलासचन्द्र था, मन्त्री जी के पुत्र का नाम महीचन्द्र था। प्रिय महीचन्द्र की एक वैश्य पुत्र के साथ बड़ी गहरी मित्रता थी, एक दिन इन दोनो ने वन मे विराजे हुए मुनि महाराज के दर्शन किये और प्रार्थना की—

चौपाई—जो स्वामी तुम कृपा करेहु, अद्भुत मन्त्र हमे इक देहु।
जातें कौतुक होय अपार, जैन धरम परकाशन हार ॥

मुनि— तब मुनि कहें सुनो हो वच्छ, भक्तामर का मन्त्र प्रतच्छ।
सो तुम साधो मनवचकाय, मनवांछित पूरन सुखदाय ॥

कृपालु मुनिश्वर ने, श्री भक्तामरजी का वारहवा काव्य विधि समेत दोनो को सिखा दिया। वणिक पुत्र तो मन्त्र सीख के ही रह गया, परन्तु मन्त्री पुत्र महीचन्द्र ने ७ दिन तक मन्त्र की आराधना की तव महादेवी प्रगट हुई और कहने लगी—

देवी— *चौपाई*

माग-माग जो इच्छा होय, कौन काज आकर्पी मोय ?
जनम तनौं तेरो दुःख हरौं, कई काल सो वेगहिं करौं ॥

मन्त्री पुत्र— *दोहा*

जैन धरम जातें बढै, बढै दया को अङ्ग।
ऐसो वर मोहि दीजिये, वचन न होवै भङ्ग ॥

देवी तो आशीर्वाद देके चली गई और जब मन्त्री पुत्र गया तो देखता क्या है कि उसके घर पर कामधेनु (गाय) खड़ी हुई है। लोग देख कर आश्चर्य करने लगे तब देवी ने प्रगट होकर कहा—

चौपाई—याको पय सींचो जहँ जाय, देव करैं तहँ कौतुक आय।
मन वांछित सब पूरन करै, ऋद्धि सिद्धि नव निधि आचरै॥

इसकी मन्त्री पुत्र ने परीक्षा की और कामधेनु का थोड़ा-सा दूध निकाल के मिट्टी के घड़े पर छोड़ दिया तो वह तत्काल सोने का हो गया। फिर चमत्कार दिखाने के लिये वही दूध अपने घर के चौके में डाल दिया तो भांति-भांति के पकवान तैयार हो गये, हजारों स्त्री पुरुषों को जिमाया पर भण्डार भरपूर ही रहा। जब यह समाचार राजा कुमारपाल ने सुने तब उन्होंने मन्त्री पुत्र को बड़े प्यार से बुलाया और अपनी श्रीमती रानी सरूपा के पास भेज दिया। महारानी ने प्रिय मन्त्री पुत्र पर बड़ा स्नेह जताया और कहा—

रानी— चौपाई

मेरी कुक्ष पुत्र नहिं होय, मोसों बांझ कहैं सब कोय।
जो यह इच्छा पूरन करो, तो जग में बहु जस विस्तरो॥

मन्त्री पुत्र—

मिथ्या धरम छाड़ तुम देव, जैन धरम की कीजै सेव।
श्रावक व्रत पुनि लेहु बनाय, जामे जीव दया अधिकाय॥

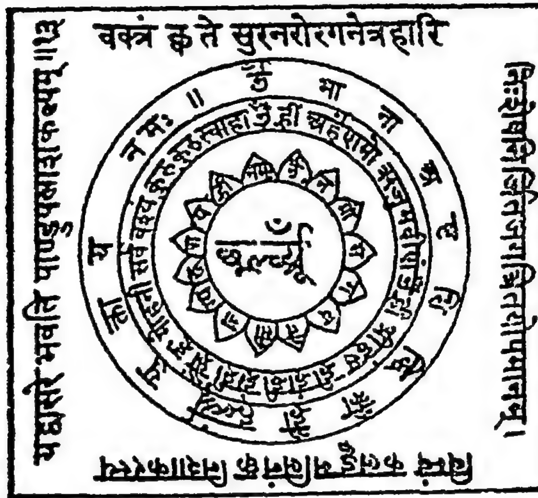
राजा और रानी ने बड़ी भक्ति और विश्वासपूर्वक जैन-धर्म अङ्गीकार किया।

चौपाई—तब मन्त्री सुत कैसी कियो, देवी को आकर्षण लियो।
रानी कुक्ष सुगर्भित हियो, रानी नृप आनन्दित हियो॥
सुखसौं बीत गये नव मास, जन्म्यौ सुत सो भयौ हुलास।

दिन-दिन बाल बढै ज्यों चन्द, मातु-पिता मन होय अनन्द ॥
बडो भयो विद्या पढ गयौ, जिनमत धीर धुरन्धर भयो ॥
दोहा—जो कोऊ याकौं पढै, और सुनै दै कान।
सकल सिद्धि ताकौं मिलै, अजर अमर पद थान ॥

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि
निःशेष निर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥ १३ ॥

तेरा कहां मुख सुरादिक नेत्ररम्य, सर्वोपमान-विजयी जगदीश नाथ।
त्योंही कलङ्कित कहां वह चन्द्र-विम्ब, जो हो पडे दिवस मे द्युतिहीन फोका ॥ १३ ॥



१३ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो ऋजुमदीण ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्री ह स ह्रौं ह्रां ह्रीं द्रां द्रीं द्रौं द्र मोहनी सर्व जनवश्य कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—यन्त्र पास रखने और ७ कांकरी लेकर प्रत्येक को १०८ बार मन्तित कर चारो ओर फेंकने से चोर, चोरी नही करने पाते और रास्ते मे किसी प्रकार का भय नही रहता। पीली माला से ७ दिन तक प्रति दिन १००० जाप करना चाहिये। धूप कुन्दरू की हो, पृथ्वी पर सोना और एक भुक्ति करना चाहिये।

भावार्थ—हे नाथ! देव, मनुष्य और नागेन्द्रों के नेत्रों को हरण करनेवाला और तीन लोक की उपमाएं कमल, चन्द्रमा, दर्पण आदि को जीतनेवाला कहा तो आपका मुख और कलङ्क से मलिन चन्द्र मण्डल जो दिन को छेवले के पत्ते के समान सफेद हो जाता है। साराश! सदा प्रकाशमान और निष्कलङ्क आपके मुख को चन्द्रमा की उपमा नहीं दी जा सकती।

श्री सुमतिचन्द्र मन्त्री की कथा

अङ्ग देश मे चम्पावती नाम की नगरी थी, वहा कर्ण नाम के राजा राज्य करते थे, उनकी रूपवती स्त्री का नाम विगनावती था, वह महा मिथ्यातिनी और कुशीलनी थी।

एक दिन कपाली नाम का योगी रानी के पास आया तव रानी ने वडी विनय के साथ उसने कहा—

रानी— चौपाई

दो पिशाचिनी विद्या मोय, तौ मे सतगुरु मानौं तोय।

योगी—पहिले दीजे मधु की धार, पुनि महिपा कीजे सघार।

पहिली रजस्वला को वस्त्र, कर त्रिशूल ले बैठे तत्र॥

भूमि समान अमावश रात, मन्त्र पढे इकलख इह भांति।

माला गरें हाड की लेय, होमे मास जीव बलि देय॥

मन शङ्का न करै कछु दक्ष, तब पिशाचिनी होय प्रतच्छ॥

इस प्रकार की विधि समेत पिशाचिनी विद्या, रानी को सिखा के बिदा माग कर गया और रानी ने एक महीने पर्यन्त चेष्टा करके पिशाचिनी देवी को वश मे कर लिया।

चम्पावती नरेश के दरवार मे सुमति नाम के मन्त्री थे, वे

वास्तविक सुमति ही थे, वे सच्चे जैन-धर्मी सद्‌ग्रहस्थ थे, एक दिन राजा ने राज्य सभा मे धार्मिक चर्चा छेड दी तब मन्त्रीजी ने कहा—

मन्त्री— चौपाई

मन्त्री कहै सुनो हो राय, धर्म मूल करुणा ठहराय।
सब धर्मनको करुणा मूल, हिंसा सकल पाप अनुकूल ॥ १ ॥
ज्यों जहाज बिन उदधि न तरे, त्यों करुणा बिन धरम न धरे।
भूषन मे चक्रेसुर जेम, सब धरमों मे करुणा तेम ॥ २ ॥
जैन धरम उत्तम जग माहि, यामे संशय कीजे नाहिं।
जिन शास्त्र के बिन अभ्यास, धर्म न क्यों हू आवे पास ॥ ३ ॥

राजा— दोहा

तब राजा उत्तर दियो, वृथा कही यह बात।
वैष्णव धर्म हि जगत मे, है उत्तम विख्यात ॥ १ ॥
जो नर विष्णु को भजे, पण्डित पूज्य कहाय।
विष्णु जोति जग मे जगे, विष्णु लोक को जाय ॥ २ ॥

इतना कहके राजा दरबार से उठ गये, वे बडे ही क्रोधित चित्त थे। राजा की ऐसी कुपित दृष्टि देख रानी ने कारण पूछा।

रानी— अडिल्ल

काहे प्रभु दिलगीर, सो मोहि बताइये।
बिन बोले महाराज, न मन की पाइये ॥

राजा— मन्त्री है अति नीच, सुबुधि मद धारिकें।
पोषे अपनो धरम, हमारो टारिकें ॥ १ ॥

रानी— सोरठा

हे राजन के राय, मन में खेद न कीजिये।
अबही देहु दिखाय, मेरे गर्व प्रहारिणी ॥

वह झट से स्मशान मे गई और पिशाचिनी को विनारा तो वह तत्काल प्रकट हो आई।

रानी— चौबोला

ए माता सेना सब अपनी, लीजे वेग बुलाई।
हमरो शत्रु सुमति मन्त्री है, ताहि विदारो जाई॥
एक सहस बहु भूत-प्रेत सङ्ग लेहु दुष्ट अति माई।
शब्द करें जो भीम भयकर, सुमति मन्त्री घर जाई॥ १॥

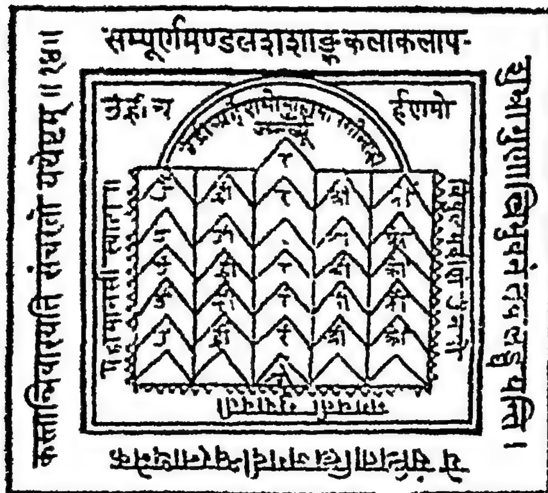
तब वह पिशाचिनी और उसके साथी बडा रौद्ररूप करके त्रिशूल, गदा, चक्र आदि लेकर सुमति मन्त्री पर दौडे गये और नाना विक्रियाएँ करके डरवाया तब उस विद्वान ने श्री भक्तामरजी का १३ वा काव्य आराधन किया, जिससे रोहिनी देवी ने प्रगट होकर पिशाचिनी आदि को पकड कर बाँध लिया और प्राण लेने को तत्पर हुई, पीछे कृपालु सुमति के कहने मे छोड दिया और देव लोक को सिधारी।

सम्पूर्ण मराडलशशांककलाकलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति।
येसंश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं
कस्तान्निवारयतिसंचरतो यथेष्टं॥ १४॥

अत्यन्त सुन्दर कलानिधि की कला से, तेरे मनोज्ञ गुण नाथ फिरे जगो मे।
हे आसरा त्रिजगदीश्वर का जिन्होंने, रोके उन्हे त्रिजग मे फिरते न कोई॥ १४।

भावार्थ—हे त्रिलोकीनाथ! पूर्णमासी के चन्द्र कलाओ समान उज्ज्वल

ऐसे आपके गुण तीन लोक में व्याप्त हैं। क्योंकि जो आप जैसे स्वामी का आश्रय प्राप्त है, उन्हें स्वेच्छानुसार विचारने से कौन रोक सकता है? साराश। जिन गुणों ने आपका आश्रय पा लिया है, उन्हीं से त्रैलोक व्याप्त हैं।



१४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विपुल मदीण।

मन्त्र— ॐ नमो भगवती गुणवती महा मानसी स्वाहा

विधि—मन्त्र पास में रखने और ७ ककरी लेकर प्रत्येक को २१ बार मन्त्र कर चारो ओर फेंकने से व्यधि शत्रु आदि का भय मिट जाता है, लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, वायु रोग नष्ट होता हैं।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्॥१५॥

देवांगना हर सकी मन का न तर, आश्चर्य नाथ। इसमे कुछ भी नही है।
कल्पान्त के पवन से उड़त पहाड़, पै मन्दराटि हिलता तक है कभी क्या॥ १५॥

भावार्थ—हे भगवान्! देवागनाओं के द्वारा यदि आपका चित्त किंचित भी चञ्चल नहीं हुआ तो इसमें क्या आश्चर्य है? क्योंकि कम्पित

किये हैं, पर्वत जिनने ऐसे प्रलयकाल के पवन से क्या सुमेरु पर्वत का शिखर हिल सकता है ? कभी नहीं।

१५ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीण।

मन्त्र—ॐ णमो भगवती गुणवती सुसीमा पृथ्वी वज्र-शृंखला मानसी महा मानसी स्वाहा।

विधि—यन्त्र पास रखने और मन्त्र द्वारा २१ बार तेल मन्त्र कर मुख पर लगाने से राज-दरबार में बोलबाला रहे, सौभाग्य बढ़े और लक्ष्मी की प्राप्ति होवे। चौदह दिन तक प्रतिदिन लाल माला द्वारा १००० जाप करना, दशांग धूप देना और एक भुक्ति करना चाहिये।

महारानी कल्यानी की कथा

केतुपुर नगर के राजा की स्त्री का नाम कल्याणी था, वह बडो धर्मात्मा और सच्चरित्र रानी थी, जिन-पूजा और भक्तामर पाठ उसका नित्य कार्य था।

चौपाई—एक दिवस यह कारण भयौ, राजा वन क्रीडा कौं गयौ।
किलोल कामिनी गोली भखी, भक्ष अभक्ष कछु नहिं लखी ॥ १ ॥
खातहिं काम व्यापियौ ताहि, सकल विचारि विसरिगौ वाहि।
व्याकुल भई आयो वर माहि, काम अन्ध सूझै कछु नाहिं ॥ २ ॥
जोग अजोग चित नहिं धरी, चम्पा दासी सों रति करी।
रानी देखि कही मन माहिं, यह कुलीन के लक्षण नाहिं ॥ ३ ॥

राजा की ऐसी ओछी वृत्ति देख महारानी कल्याणी बडी ही चिन्ता मे पड गयी थी, ससार और विषय भोग उन्हे विरस भासने लगे थे।

चौपाई—इतने मे कामातुर राय, लाग्यो रानी लेन बुलाय।
काम केलि क्रीडा के हेतु, फिर रानी तब उत्तर देत ॥ १ ॥
राजा कीजे कोटि उपाय, मे क्रीडा करवे की नाय।
तुम्हरी क्रिया देखि के टरौं, मे अब तुम्हरो सग न करौं ॥ २ ॥
राजा—तब फिर राजा कही विचार, क्यों नहि आवत हो वरनार।
आज कहा रिस उपजी तोय, क्यो नहि अङ्ग लगावत मोय ॥
रानी—हम सों क्रीडा नहि कछु चलि, तुमहि जोग इ चम्पा भली।
धर्म क्रिया करि हीन जो होय, तासौं सगति करौं न कोय ॥

केतकपुर नरेश के चित्त मे विवेक की मात्रा थोडी तो थी ही आपने कुपित होकर सिपाहियो को आज्ञा दे दी कि रानी कल्याणी को विकट वन के कुएँ मे ढकेल आओ, तब सिपाहियो ने वैसा ही किया। उस पवित्र चरित्र कल्याणी बाई ने श्री भक्तामरजी के १४ वें और १५ वे युगल काव्य की आराधना की, जिसके प्रसाद से जम्भा देवी प्रगट हुई।

सोरठा—सुमरत जम्भा आय, सिंहासन रचि हेमको।
रानीको बैठाय, आपुन कीन्हीं आरती ॥ १ ॥

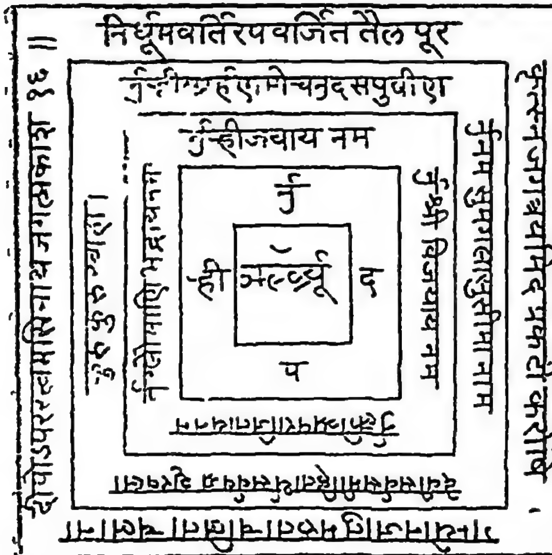
जब राजा को खबर लगी तब वे वहा दौडे गये और कहने लगे—

चौपाई—मै मरनको डारी याह, को मारै प्रभु राखै ताह।
देवी—एरे दुष्ट क्रिया करि हीन, अति मति मन्द बुद्धि करि छीन।
तेरे नहीं विवेक विचार, डारी निज तिय कूप मझार ॥

यह सुमरत है मन्त्र महन्त, जाके वश मे देव अनन्त।
सजम शील धर्म गुण भरी, गुण मङ्गल की वेली खरी॥
राजा—तब राजा लाग्यो पछतान, मोकों माता भयो न ज्ञान।
बहुत बात कहिये कह तोहि, अब तू मातु क्षमा कर मोहि॥

निदान राजा ने अपना दुश्चरित्र छोड दिया और श्रावक के व्रत अङ्गीकार किये, जम्भा देवी स्वर्ग-लोक को चली गई और महारानी ने अर्जिका के व्रत लिये और आयु के अन्त मे समाधि-पूर्वक शरीर छोड कर स्वर्ग को सिधारी।

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६॥



१६ ऋद्धि—ॐ ह्रो अर्हं णमो चवदश पुव्वीण।

मन्त्र—ॐ णमो मङ्गला सुसीमा नाम देवी सर्वसमोहितार्थ वज्र शृङ्खला कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—यन्त्र पास रखने और १०८ वार मन्त्र जप कर राज-दरवार मे जाने से प्रति-पक्षी की हार होती है। शत्रु का भय नही रहता। ६ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप हरे रङ्ग की माला द्वारा जपना और धूप कुन्दरू की देना चाहिये।

बत्ती नही नहि धुआँ नहि तैलपूर, भारो हवा तक नही सकती बुझा है।
सारे त्रिलोक बिच है करता उजेला, उत्कृष्ट दीपक विभो। द्युतिकारि तू है ॥ १६ ॥

भावार्थ—हे नाथ! आप त्रैलोक को प्रकाशित करनेवाले अद्वितीय और विचित्र दीपक हो, जिसको न बत्ती चाहना पडती है, न तेल, परन्तु बडे बडे पर्वतों को हिलानेवाली हवा के झोकों से भी नहीं बुझ सकता।

क्षेमकर कुमार की कथा

मण्डपपुर नगर मे राजा महीचन्द्र राज्य करते थे, उनकी सोमवदनी भार्या का नाम सोमश्री था। उभय दम्पति के दाम्पत्य प्रेम से उनने मित्रा वाई नाम की एक कन्या हुई थी।

जव वह ७ वर्ष की हुई तव श्रीमती नाम की अर्जिका के पास उसकी लौकिक और धार्मिक शिक्षा आरम्भ करा दी। उस विनयवती कन्या ने उस सच्चरित्र गुरानी के पास अनेक प्रतिज्ञाओं के सिवाय यह भी प्रतिज्ञा ली थी कि रत्नमयी जिन प्रतिमा के दर्शन किये विना अन्न जल ग्रहण न करेगी।

जव उनकी मनोहरी कन्या १६ वर्ष की हो गई तब एक दिन रानी सोमश्री ने अपने स्वामी से मौका पाकर कहा—

चौपाई—पुत्री भई व्याह के जोग, याको कीजे शुभ सजोग।

तव राजा महीचन्द्र ने पुरोहित को वुला कर कहा कि वाई के लिये सुन्दर घर वर की खोज करो। पुरोहित जहा-तहा विचरता कुन्दपुर मे पहुँचा। वहा सेठ क्षेत्रपाल के यहा क्षेमकर नाम का पुत्र था।

चौपाई—विद्या विषे सकल परवीन, रूप कला मनमथ वश कीन।
बुद्धि विवेक कला विज्ञान, सकल गुनन करि परम निधान ॥

राजा द्वार महिमा तसु बनी, पण्डित लोग गिने शिरोमनी।
पञ्चन मध्य सभा सिगार, मन्त्र तन्त्र साथ शुभसार॥
भक्तामर मे अति लव लीन, पठन पठावन मे तल्लीन।
विद्या ज्ञान प्रकाशन शूर, परमारथ पथ करणा पूर॥

अधिक लिखने मे क्या! सर्व गुण सम्पन्न चिरजीव क्षेमकर के साथ मित्रा बाई की सगाई करके पुरोहितजी घर को लौट गये। दोनो ओर से विवाह की तैयारिया होने लगी और सेठ क्षेमपाल बडे ठाठ से सज-धज कर बरात ले गये।

दोहा—ब्याह भयो अति प्रीतिसों, कीन्हीं विदा बरात।
गये गेह अपने सर्व, आनन्द उर न समात॥

चौपाई—घर भीतर जब दुलहिन जाय, ना जल पिये अन्न नहिं खाय।
लागे करन सकल उपचार, यह कुछ दोष देव अनुसार॥
सासू—जौन भाति भोजन तुम करो, सो विधि सकल हमे उचरो।
बहू—पार्श्वनाथ के दर्शन करों, तब मे अन्न पान आदरो।
सासू—यामे बहू कहे तू कहा, प्रतिमा है घर भीतर महा।
उठ कर मुख धोवहु तुम बाल, दर्शन जाय करो ततकाल॥
बहू—रतन बिम्ब मे देखों जबै, भोजन पान आचरों तबै।
कुटुम्ब—सब परिवार मनावे ताहु, तरन बिम्ब कहु देखे नाहु।
यह हठ छाडि बहू तुम देउ, जाय देवालय दरशन लेउ॥
बहू—हाथ जोडि व्रत लियो महन्त, सीख दई गुरु देव सिद्धान्त।
क्यो न प्रान अबहु कढि जाय, तौहू व्रत छोडन की नाहिं॥
क्षेमकर—इतने मे क्षेमकर आय, तिन लीनों जोगासन जाय।
निर्धूमवर्ति काव्य मुख पढो, अतिशय तेज अखण्डित बढो॥
सगरी रैन बीत जब गई, चतुरभुजी तब प्रगटत भई।
चार भुजा सोहे तसु अङ्ग, महा जोति फैली सरवङ्ग॥

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदरनिरुद्ध महाप्रभावः
सूर्यातिशायि महिमासि मुनीन्द्र लोके ॥१७॥

ॐ	न	मो	अ
जि	त	श	त्रु
प	रा	ज	यं
कु	रु२	स्वा	हा

१७ ऋद्धि—[illegible] [illegible] सिद्धि [illegible] ।

मन्त्र—ॐ [illegible] [illegible] पीड़ा [illegible] सर्व [illegible] रोग निवारक [illegible] स्वाहा ।

विधि—यन्त्र पास रखे और [illegible] पानी मन्त्र द्वारा २१ बार मन्त्रित कर पिलाने से पेट की असाध्य पीड़ा तथा [illegible] शूल गोला आदि सभी

रोग मिटते है । ७ दिन तक प्रतिदिन २००० जाप सफेद माला द्वारा जपना और धूप चन्दन की देना चाहिये ।

तू हो न अस्त, तुमको गहता न राहु, पात प्रकाश तुझसे जग एक साथ ।
तोरा प्रभाव रुकता नहि बादलो से, तू सूर्य से अधिक है महिमा निधान ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे मुनीन्द्र ! आप ऐसे विलक्षण सूर्य है, जो न तो कभी अस्त होता है, न राहु से ग्रसा जाता है, न बादलों से आच्छादित होता है और एक क्षण मे समस्त ससार को प्रकाशित करता है ।

बाई कल्याणश्री की कथा

कुमकुम देश मे चक्रेशपुर नाम का नगर था, वहा के राजा नरसिंह और रानी रतनावती के एक पुत्र हुआ, उसका नाम रतनशेखर रखा।

चौपाई—पोडश बरस भयो जब बाल, काम कला उपजी तिहिंकाल ।
जित तित निकसि तमासैं जाय, परतिय निरखि रहै जु लुभाय ।
रसिक कथा नित सुनै सुभाय, तिय शृङ्गार महा सुख पाय ।
वह सुशील यह कामी अङ्ग, भयो केर बदरी को सङ्ग ॥

जब चक्रेशपुर नरेश को पुत्र की काम-जागृति प्रतीत होने लगी तब उन्होने रतनशेखर का विवाह कल्याणश्री नाम की राजकन्या के साथ कर दिया। वह कन्या महाशीलवती, मानो धर्म की अवतार ही थी, परन्तु रतनशेखर महादुराचारी और नीच वृत्ति का था । रतनशेखर की ऐसी कुटिल परिणति देख कर एक दिन कल्याणश्री ने कहा—

चौपाई—सुनो कन्त यह मेरी बात, जासों सुजस होय विख्यात ।
धर्महीन नर मूरख जोय, पर तियसों रति मानै सोय ॥
धर्मनीति जाको न सुहाय, अन्तकाल मर दुरगति जाय ।
ज्ञानवन्त ! इतनी अब करो, शील अणुव्रत निहचैं धरो ॥

रतनशेखर— अडिल्ल छन्द

राज सम्पदा ऋद्धि, सुभाग न पाइये।
कीजे सुख समार, न ताहि गमाइये॥
ध्यान व्रतादिक नेम, वृथा क्यों कीजिये।
मेरे घर बहु सुक्ख, नारि सुन लीजिये॥

दोनो का बहुत कुछ उत्तर प्रत्युत्तर हुआ। अन्त मे रतनशेखर ने यही कहा कि मैं अपने गुरुजी से पूछूगा और जैसा वे कहेगे, वैसा ही श्रद्धान करूँगा। वह अपने गुरु एक योगी के पास गया और बड़े विनय से पूछने लगा—महाराज ! क्या जैन-धर्म मे भी कुछ सचाई है ?

योगी—वे वादी मिथ्याती आय, नग्न देव पूजत हैं जाय।
विद्या धरम न जाने कोय, वेद बात मानत नहिं लोय॥

इतना कहके उसने अपने हाथ की मुद्रिका निकाल कर सामने फेंक दी और कहा—मेरा चमत्कार देखो, अचेतन को चलाये देता हूँ। उसने थोड़ा-सा मन्त्र पढ के फूक दिया कि मुद्रिका चलने लगी। भोले-भाले रतनशेखर को योगी की इस लीला पर बड़ी श्रद्धा हो गई, वह कल्याणश्री के पास आया और जैन-धर्म की निन्दा करता हुआ कहने लगा—जैन-धर्म मे मन्त्र-यन्त्र कुछ भी नही है।

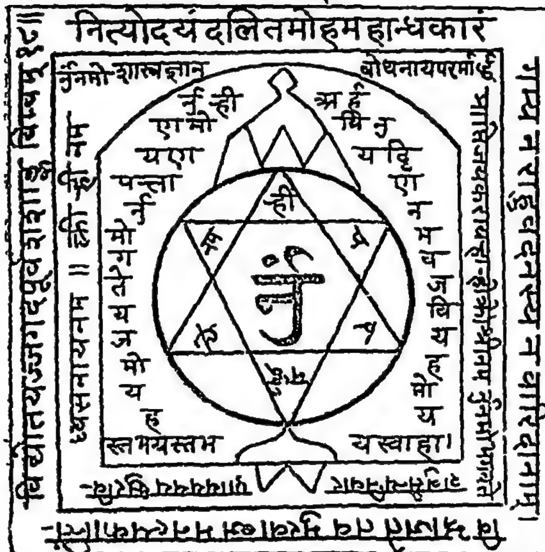
चौपाई—जिन शासन में मन्त्र जो होय, मोको प्रगट दिखावहु सोय।
तब तिन काव्य मन्त्र आदरो, ऋद्धि सिद्धि गरभित गुण भरो॥
'नास्ति कदाचित' सुमरो जबै, गन्धारी सो पहुची तबै।

देवी—बोलो क्यों सुमरी तुम बाल, कारज कहो करो ततकाल।

कल्याणश्री—मैं माता तुम सुमरी एम, कौतक एक दिखाओ जेम।
जैन-धर्म की महिमा होय, मिथ्यामत माने नहिं कोय॥

तव उस गन्धारी देवी ने एक सुवर्णमय नगर रच दिया, जिसमे बडे-बडे विशाल जिन-मन्दिर और रत्नमय जिनविम्व वन गये । उस नगर को वापी, कूप, तालाव, वगीचा आदि सव प्रकार से अनुपम कर दिया, जिसे देख कर सव लोग चकित हो गये और मिथ्यामती लोगो की अकल ठिकाने आ गई, वे जैन-धर्म को धन्य-धन्य कहने लगे । उस योगी व रतनशेखर और अन्य-अन्य स्त्री-पुरुपो तथा चक्रेशपुर नरेश को जैन-धर्म अङ्गीकार कराके गन्धारी देवी निज स्थान को चली गई ।

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिम्बम् ॥ १८ ॥



१८ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउयणयद्दित्ताण ।

मन्त्र—ॐ णमो भगवते जय विजय मोहय मोहय स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा ।

विधि—मन्त्र पास रखने और १०८ बार मन्त्र जपने से शत्रु अथवा शत्रु की सेना का स्तम्भन होता है । ७ दिन तक प्रति दिन १००० जाप लाल माला से करना, धूप दशागी देना और एक बार भोजन करना चाहिये ।

मोहान्धकार हरता रहता उषा हो, जाता न राहु-मुख मे, न छुपे घनो से ।
स्वच्छे प्रकाशित करे जग को सुहावे, अत्यन्त कान्तिधर नाथ, मुखेन्दु तेरा ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे भगवन्! आपका मुख-कमल ऐसे विलक्षण चन्द्रमा की शोभा को प्राप्त है, जो सदैव स्वयम् प्रकाशित रहता वा जगत् को प्रकाशित करता है और मोह, अन्धकार को दूर करता है। उसे न राहु ग्रसता है और न वह मेघों से ढक सकता है।

भद्रकुमार की कथा

जिस समय की यह कथा है, उस समय कुलिंग देश मे वरबर नगर था, वहाँ राजा चन्द्रकीर्ति रहते थे। जब उनके मन्त्री सुमतिचन्द्र का स्वर्गवास हो गया था, तव राजा ने उनके पुत्र भद्रकुमार को बुलाया और कहा कि तुम अपने स्वर्गीय पिता की पदवी अङ्गीकार करो।

भद्रकुमार निरा निरक्षर था, लिखना पढना तक भी वह नहीं जानता था। वेचारा बडा ही लज्जित हुआ और राजा को अपना दोप कह सुनाया और कहा कि मेरे मन्त्री पद से मेरी ही नहीं, आपकी भी जगत् मे हँसी होगी।

राजा— *दोहा*

बालक तुमने क्यो नहीं, विद्या पढी सुभाय।
तात तिहारो दक्ष अति, तुम मूरख दुखदाय॥

भद्रकुमार— *दोहा*

या जग मे बहुते रतन, पग-पग पे रसकूप।
भाग्य विना नहिं पाइये, निहचै जानो भूप॥

राजा— *सोरठा*

यामे विद्या नाहिं, ताको जनम अकारण्य है।
यह समझो मन माहिं, नीके ही प्रिय भद्र तुम॥

भद्रकुमार अत्यन्त लज्जित होकर दरबार से तो चला आया, परन्तु उसके चित्त मे विद्या-धन कमाने की गहरी चिन्ता हो गई। वह एक दिन बनवासी सकल सजमी मुनि महाराज के पास गया और विनयपूर्वक अपने चित्त का क्लेश कह सुनाया।

मुनि— चौपाई

मिथ्या धरम छाड तुम देव, मन वाछा पूरन कर लेव।
जो तुम जैन धरम आचरौ, विद्या धन गुन सुख आदरो ॥ १ ॥

जब गुणग्राही भद्रकुमार ने मुनि महाराज के उपदेश से जैन-धर्म और श्रावक के व्रत अङ्गीकार कर लिये तब उन कृपालु मुनीश्वर ने श्री भक्तामरजी का १८ वा काव्य विधि समेत सिखा दिया। भद्रकुमार ने अन्न, जल तक छोड कर तीन दिवस तक बडी तपस्या की और मन्त्र सिद्ध किया। परिणाम यह हुआ कि वज्रा देवी प्रकट हुई और कहने लगी—

देवी— चौपाई

क्यो बालक आकर्षी मोय, माग-माग जो इच्छा होय।
बालक—बार-बार मै बन्दो पाय, विद्या वर दीजे मो माय।

विद्या वर देकर देवी निज-स्थान को चली गई और मन्त्री-पुत्र भद्रकुमार अत्यन्त प्रसन्न होकर घर को चले आये।

चौपाई—सुखसो आन मिलो परिवार, लायो विद्या अपरम्पार।
पुनि वह गयो राज दरबार, जाय राजसों करी जुहार ॥ १ ॥
देखत राजा हर्षित भयो, सकल सभा मनमोहित भयो।
आदर दै पूछें महराय, तुम विद्या कह पाई भाय ॥ २ ॥
तब प्रिय भद्र कही समझाय, पूरब कथा कही सुख दाय।
तब राजा ने ऐसो कियो, फेर मन्त्रि पद इनको दियो ॥ ३ ॥

सकल सभा मे भयो प्रधान, राजा बहु विधि राखो मान।
पुनि राजा श्रावक व्रत लियो, अपनो गुरु करके थापियो ॥ ४ ॥

पाठक, जब जैन-धर्म के प्रसाद से केवल-ज्ञानरूपी महाविद्या सिद्ध होती है, तब यह शास्त्रीय विद्या मिल जाना एक मामूली-सी बात है।

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमःसु नाथ !
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥ १९ ॥

क्या भानु से दिवस में, निशि मे शशी से, तेरे प्रभो, सुमुख से तम नाश होते।
अच्छी तरह पक गया जग बीच धान, है काम क्या जल भरे इन बादलो से ॥ १९ ॥

१९ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो विज्ञाहरण।

मन्त्र—ॐ ह्रां ह्री ह्रू ह्र यक्ष ह्री वषट् नम स्वाहा।

विधि—पास मे यन्त्र रखने से और मन्त्र को १०८ बार जपने से अपने पर प्रयोग किये हुए दूसरे के मन्त्र विद्या, टोटका जादू मूठ आदि का असर नही होता। उच्चाटन का भय नही रहता।

सुनार— सोरठा

बोल्यो दुष्ट सुनार, राय हमे लागै कहा।
जो मुहि दीनों आप, सो हम दियो गढाय के॥ १॥
सेठ बाल बुलवाय, महाराज सच पूछिये।
जो मे बदलौं राय, तो जानो सो कीजिये॥ २॥

राजा ने तुरन्त ही सुखानन्दकुमार को बुलवाया और खूब डांट फटकार लगाई।

*राजा—*साचे मणि तुम धरे दुकाय, खोटे हमे दये लगवाय।
तुम हमको नहिं रंचे जच, राजन के न चलें प्रपच॥ १॥
*सुखानन्द—*सेठ नन्द बोलो कर जोर, राजा हमे न लाओ खोर।
हम जो रतन बदल यदि लेय, तुमको ज्वाब कौन विधि देय॥२॥

उस विवेकहीन राजा ने सुनार को तो बिदा कर दिया और सेठ सुखानन्द को जेलखाने मे कैद कर देने का हुक्म देकर कहा—

रतन हमारे देहि मगाय, तब मैं याको देहु छुडाय।

जब जेलखाने मे सुखानन्द सेठ को तीन दिन बिना अन्न जल के बीत गये तब उन्होने श्री भक्तामर के १९ वा काव्य का स्मरण किया, जिससे जम्बू देवी ने प्रगट होकर कहा—

*देवी—*कहो वच्छ जो इच्छा होय, ततछन काज करौं मैं सोय।
*सुखानन्द—*रतन बदल और हु ने लये, हमको नृप योंही दुःख दये।

तब तो देवी, सुखानन्द के सम्पूर्ण बधन तोड कर उन्हे उनके घर पर छोड कर अपने स्थान को चली गई। कुछ दिनो के बाद जब सुनार ने सुखानन्दकुमार को घर पर बैठे देखा तब उसने राजा से कहा कि हे महाराज! क्या आपके सच्चे रत्न मिल चुके है,

जो सुखानन्द को छोड़ दिया है ? राजा ने विस्मित होकर अपने मन्त्री को सुखानन्द के घर भेजा और उन्हे पुनः पकड़ बुलाया। तब देवी ने पुनः प्रगट होकर सब सच्चा हाल कह सुनाया, जिससे राजा को बडा सन्तोष हुआ। सुनार को बहुत कडा दण्ड दिया। ठीक है देवता भी धर्मात्माओ के दास बन कर रहते हैं।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजःस्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥ २० ॥

जो ज्ञान निर्मल विभो। तुम्मे सुहाता भाता नही वह कभी परदेवता मे।
होती मनोहर छटा मणिमध्य जो है, सो काचमे नहि पडे रवि-विम्ब के भी ॥ २० ॥

२० ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाण।

मन्त्र—ॐ श्रां श्रीं श्रूं श्रः शत्रु भय निवारणाय ठः ठः स्वाहा।

विधि—पास मे यन्त्र रखने और मन्त्र को १०८ बार जपने से सन्तान की प्राप्ति होती है, लक्ष्मी मिलती है, सौभाग्य बढता है, विजय लाभ होता है और बुद्धि बढ़ती है।

सेठ— सोरठा

सुनो महामुनि साध, पुत्र एक मेरे घरे।
कर कुदेव अराध, मेरो बरजो ना रहे ॥ १ ॥
मिथ्या मत ससर्ग, विष्णुदास वरुणा तजी।
छोडो अपनो वर्ग, नाथ ताहि सम्बोधिये ॥ २ ॥

मुनि (बालक से)— चौपाई

क्यों तुम कहा पढ़े हो बच्छ, हम आगे कीजे परतच्छ।

विष्णुदास—मैं तो सुगुरु पढ़ौ कछु नाहिं, विष्णु भगत मेरे मनमाहिं।

मुनि—पञ्च मिथ्यात मूलतें तजो, तब तुम एक विष्णु को भजो।
जबलों नहिं नाशें ये पञ्च, तबलो विष्णु न जाने रञ्च ॥

विष्णुदास—स्वामी अब मैं भयो उपास, जिनमत को अति करों प्रकाश।
देव शास्त्र गुरु साखी भरों, मे मिथ्यात्व मूल नहिं करों ॥१॥
जीव दया पालों ठहराय हिंसा छोडी मन वच काय।
जिनवर धर्म मर्म समझाय, जिन दीक्षा दीजे गुरु राय ॥२॥

मुनि—दोप अठारह तें निरमुक्त, सोह देव निरञ्जन युक्त।
दरशन बिन उपजे नहिं ज्ञान, ज्ञान बिना नहिं चारित जान ॥१॥
चारित विना ध्यान नहिं होय, ध्यान बिना नहिं शिवपद कोय।
दरशन ज्ञान चरण चितलाय, गहो महा समकित दृढ पाय ॥२॥

विष्णुदास—अब गुरु तुम इतनों जस लेय, एक ज्ञान हमको तुम देव।
जातें अद्भुत कौतुक होय, जैन-धरम जाने सब कोय ॥१॥

मुनि—अहो वच्छ तुम नीकी कही, लेहु मन्त्र तुम साधो सही।
जो वाको निहचें आदरो, ताको मन वाछित फल वरो ॥ १ ॥

मुनि महाराज भक्तामरजी का २० वा काव्य उसे विधिपूर्वक सिखा कर विहार कर गये। एक दिन राजा सिंहसेन ने विष्णुदास

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा.
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥

मन्येवरंहरिहरादय एव दृष्टा

ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्ण सम-

२१ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्णसमणाण ।

मन्त्र—ॐ नम श्री मणिभद्र जय विजय अपराजित सर्व-सोभाग्य सर्व सौख्य कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—मन्त्र को ४२ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपने से और पास मे यन्त्र रखने से सब अपने आधीन होते है ।

सेठ श्रीधर और रूपश्री की कथा

मालवा देश मे विशाला नाम की एक नगरी थी, वहा नामचन्द्रजी नाम के एक सेठ रहते थे, पुण्योदय से उन्हे एक पुत्र हुआ था, जिसका नाम श्रीधर था, जब वह विद्याध्ययन के योग्य हुआ तब उसने गणित, साहित्य, छन्द व्याकरण आदि विद्याओ के सिवाय मनवाछित फलदायक श्रीभक्तामरजी का भी अभ्यास किया था । सेठ नामचन्द्र ने प्रिय श्रीधर कुमार का विवाह रूपश्री नाम की एक कन्या के साथ कर दिया था, वह कन्या नाम के सिवाय रूप की रूपश्री थी, वैसे ही जैन-धर्म और सदाचार से भी सम्पन्न थी ।

चौपाई—एक दिवस बरसा अति घोर, मूसलधार गिरै जल जोर ।
अन्धकार व्याकुल सब भयो, दिनकर क्रान्त सूर्य छिप गयो ॥
पृथ्वी सकल जलामय भई, तर्जित गर्जि भयानक ठई ।
दामिन दमके अति भयभीत, बाढ बहे भारी विपरीत ॥

दोहा—श्रीधर सों कह रूपश्री, चलो देवालय जाय।
आठों द्रव्य सजोयकें, पूजें श्रीजिन राय॥
श्रीधर ने उत्तर दियो, देखतकें कछु नाय।
कछु दृगन सूझत नहीं, किमि जिन वदन जाय॥

रूपश्री— *अडिल्ल*

जोलौं श्रीजिनवर की, वसु विधि पूजा ना करौं।
तोलौं मैं जल अन्न, नेकु ना आदरौं॥

श्रीधर— जल सौं कहा बसाय, रि मूरख बावरी।
छोडौ हठ वर नारि, कुमति क्यों आदरी॥

रूपश्री— *सोरठा*

प्राण जाय तो जाय, लई प्रतिज्ञा न टरे।
सुनो कन्त चितलाय, इस तनकी आशा कहा॥

तव श्रीधर ने शरीर शुद्ध करके पद्मासन बैठ कर मन्त्र आराधना शुरू कर दी तो मीरा देवी ने प्रगट होकर कहा—

देवी— *चौपाई*

कह-कह रे श्रीधर मुख बात, कारण कौन कियो अवदात।
इच्छा हो सों पूरण करौं, तेरे मन को सशय हरौं॥

श्रीधर—श्रीजिन पूजा की विधि नाय, कैसे के जलपान कराय।
यामें विलम न कीजे माय, श्रीजिन दरशन वेग कराय॥

तव देवी ने वहुत ही सुन्दर मायामई रतनरचित विमान सजा कर दोनो को बैठाया और पवनगामी गति से शीघ्र ही जिन चैत्यालय को ले गई। दोनो नर-नारी ने भक्ति-भाव समेत जिन वदना और अष्ट द्रव्य से पूजा की। वहा सकल परिग्रह के त्यागी दिगम्बर मुनिराज के दर्शन हुए तव श्रीधर ने सविनय निवेदन किया कि—

श्रेणिक— चौपाई

ऐसो व्रत उपदेशो मोय, जातें दुहूँ लोक फल होय।

मुनि—अहो वच्छ सुनियो दे कान, पञ्च कल्याणक व्रत परवान।
ऋद्धि सिद्धि वन जातें होय, अन्तकाल अमरापति सोय॥

श्रेणिक—कैसी विधि हम पालें जाय, सो गुरु हमको देहु वताय।
किस दिन कौन मास किह वरी, सो गुरु हमे वताओ खरी॥

मुनि—तुम कीजो यह वारह मास, मनवाञ्छित फल पुजवें आस।
चार वीस तीर्थङ्कर भये, तिनके पञ्च कल्याणक थये॥
गर्भ जनम तप ज्ञान निर्वान, तिनकी तिथि लीजे शुभ मान।
कल्याणक दिन जव-जव होय, तव-तव व्रत कीजे भविलोय॥
वरस एक मे पूरो होय, जनम-जनम को पातक खोय।
पुनि ताको उद्यापन करे, नातर व्रत दूनौ आदरे॥

मुनिराज के उपदेश को दोनो ने शिरोधार्य करके पञ्चकल्याणक व्रत उद्यापन सहित किया और सदा धर्म मे सावधान रहे। आयु के अन्त मे समाधिपूर्वक देह छोड कर देवलोक गये।

चौपाई—इहि विधि और करे जो कोय, ऐसे फल को प्रापत होय।
जो मिथ्याती निन्दें याह, घोर नरक कुण्डन में जाय॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वादिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

भावार्थ—हे मुनीन्द्र ! साधु महात्मा लोग आपको परम पुरुष अत्यन्त निर्मल और अन्धकार के समक्ष सूर्य स्वरूप मानते हैं। वे साधु तुम्हें भले प्रकार प्राप्त करके मृत्यु को जीतते हैं, इसलिये आपके सिवाय कोई दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः ॥ २३॥

ॐ ह्रीं अर्हंणमोआसीविसाणं।
ॐ णमो भगवती जयावती
मम समीहितार्थ मोक्ष
सौख्य कुरु कुरु स्वाहा।

२३ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो आसीविसाण।

मन्त्र—ॐ णमो भगवती जयावती मम समीहितार्थ मोक्ष सौख्य कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—पहिले मन्त्र को १०८ बार जप कर अपने शरीर की रक्षा करे पश्चात् जिसे प्रेत बाधा हो, उसे झाडे और यन्त्र पास रक्खे। इससे प्रेत बाधा दूर होती है।

सेठ पुत्र महीचन्द की कथा

भारतवर्ष मे उज्जैन नगर प्रसिद्ध है, किसी समय वहा राजा श्रीचन्द्र राज्य करते थे, वे बडे न्यायशील, जैन-धर्मी और प्रजा पालक थे, उस नगर मे मतिसागर नाम के एक सेठजी थे, वे बडे ही अनुभवी और विद्वान थे, राजा ने उन्हे मन्त्री का काम सौप रक्खा था। मतिसागर को एक पुत्र था, उसका नाम महीचन्द्र था। राजा श्रीचन्द्र ने एक दिन प्रिय महीचन्द्र को बच्चो के साथ खेलते देखा तब उन्होने मतिसागर मन्त्री से कहा—

अधिक क्या लिखे उस पिशाचिनी ने उन निस्पृह महात्मा के ऊपर सिंह बाघ छोडे अग्नि बरसाई और भारी उपसर्ग किया। पर वे धीर-वीर मुनिराज अपनी ध्यान और मुद्रा से बिल्कुल ही न डिगे। जब राजा श्रीचन्द्र को यह समाचार मिला तब उन्होंने प्रिय महीचन्द्र को बुला कर कहा कि इस उपद्रव के शान्त करने को तुम्ही समर्थ हो तब महीचन्द्र ने मुनिराज के समीप ही एकान्त स्थान मे बैठ कर २२ और २३ जुगल काव्य का आराधन किया. तब मानस्थम्भिनी देवी ने प्रगट होकर कहा—

देवी—कहुरे वच्छ सु कारण कौन, मोको आकर्षो धरि मौन।
कारन होय सो देहु बताय मन वाछित फल पुजवू आय॥
महो०—मुनि उपसर्ग होत है घनौ तुरत उपाय करो तिहि तनौ।
चण्डी को दल देखो जाय ताको नाश करो उपाय॥
देवी—तब देवी बोली रिस भरी मानसथम्भनी हौं मैं खरी।
मेरे आगे काकौ मान, छिन मे जाय करूं घमसान॥

वह मानस्थम्भिनी देवी भीमनाद करती हुई जब चण्डिका देवी पर गई तब तो चण्डिका के हाथ के हथियार छूट पडे भूत प्रेतो को भागने की पड गई और सिंह बाघ तो शृगाल के समान दुम दबा के खडे रह गये।

चण्डी—शरण तुम्हारी लीनों माय, अबकें यह अपराध क्षमाय।
दो कर जोर सो विनती करे, फिर-फिर चण्डी पायन परे॥

इतने मे सबेरा हो गया और मुनि महाराज का मौन खुला तब मुखचन्द्र से अमृतवाणी से कहने लगे—हे देवी! इसमे चण्डी का दोष नहीं है इसमे अन्तरङ्ग कारण हमारा असाता कर्म है यह बेचारी चण्डी तो बाह्य निमित्त मात्र है. इसे दया कर छोड दो।

कृपालु मुनिराज के कहने से देवी ने चण्डी को छोड दिया और निज-स्थान को गई। चण्डी ने मुनिराज के उपदेश से जैन-धर्म का सम्यग्दर्शन अङ्गीकार किया, राजा ने महोचन्द्र कुमार को गले से लगा लिया और वडी प्रशंसा की।

त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनंगकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥ २४ ॥

योगीश, अव्यय, अचिन्त्य, अनगकेतु, ब्रह्म असंख्य परमेश्वर, एक नाना।
ज्ञानस्वरूप, विभु, निर्मल, योगवेत्ता, तथा आद्य, सन्त तुमको कहते अनन्त ॥ २४ ॥

त्वामव्ययंविभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं

ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं स्थावर

२४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाण।

मन्त्र—स्थावर जंगम वायकृतिम सकलविष यद्भक्ते अप्रणमिताय ये दृष्टिविषयान्मुनीन्ते वड्ढमाणस्वामी सर्वहितं कुरुकुरु स्वाहा। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रां झ्रीं स्वाहा।

विधि—मन्त्र द्वारा २१ बार राख मन्त्रित करके दुखते हुए सिर पर लगाने से और यन्त्र पास रखने से सिर की सब पीडाएँ दूर होती है। प्रतिदिन १०८ बार मन्त्र जपना चाहिये।

भावार्थ—हे प्रभो ! सन्त पुरुष आपको अक्षय, अचिन्त्य असंख्य आदिनाथ, समर्थ निष्कर्म, ईश्वर, अनन्त, कामनाशक, योगीश्वर प्रसिद्धयोगी, अनेक रूप, एक स्वरूप और ज्ञान स्वरूप निर्मल कहते हैं ।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधात्
त्त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय शंकरत्वात् ।
धाताऽसि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्-
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥ २५ ॥

तू बुद्ध है विबुध-पूजित-बुद्धिवाला, कल्याण कर्तृ वर शङ्कर भी तुही है ।
तू मोक्ष-मार्ग-विधि-कारक है विधाता है व्यक्त नाथ । पुरुषोत्तम भी तुही है ॥ २५ ॥

भावार्थ—हे भगवन् ! देवताओं ने आपके केवलज्ञान बोध की पूजा की हैं; इसलिये आपही बुद्ध देव हो, त्रैलोक्य के जीवों के कल्याणकर्त्ता हो, इसलिये आप ही शङ्कर हो, मोक्ष मार्ग की विधि का विधान करने के कारण आपही विधाताहोऔर पुरुषोमे उत्तमहोनेकेकारणआपहीपुरुषोत्तम वानारायणहो।

बुद्धस्त्वमेवविबुधार्चितबुद्धिबोधा-

२५ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाण ।

मन्त्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्र अ सि आ उ सा झ्रां झ्रीं झ्रौं स्वाहा । ॐ नमो भगवते जय-विजयापराजिते सर्वसौभाग्य सर्व सौख्य कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धि मन्त्र की आराधना से और पास मे यन्त्र रखने से नजर उतरती है और अग्नि का असर आराधक पर नही होता ।

चौपाई—कैयक भई फिर बावरी, प्रेत नाथ उनकी मति हरी।
कैयक बैठ रहीं वन माह, जिनको तनमन की सुधि नाह॥
कैयक शब्द कर विकराल, कैयक रोवत हैं बेहाल।
कैयक फेंके सिर पर धूर, वन के वृक्ष करें चकचूर॥

पाठक! पूछो तो अब ही वास्तविक फाग हुई थी। राजा जितशत्रु यह लीला देख कर अवाक् हो रहे थे, इतने मे वहा के एक प्रसिद्ध सेठ उनसे मिले।

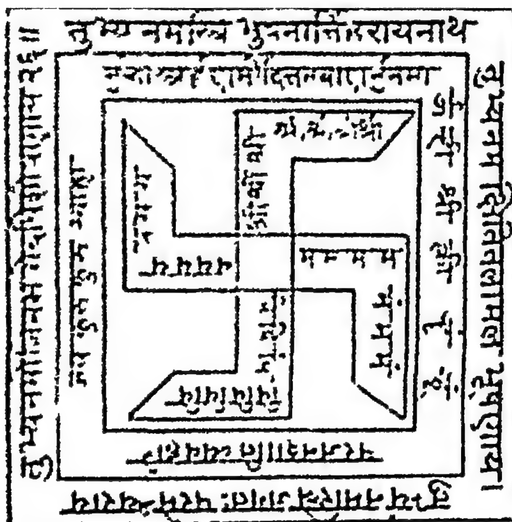
चौपाई—महाराज काहे दिलगीर, ऐसी कहा परी है पीर।
जा कारण ऐसे अनमने, सो तो बात कहत ही बने॥
राजा—कहा कहे कछु कहिय न जाय, हमको प्रेत दीनों दुःख आय।
रानी सकल भई बावरी, ताते गति मति मेरी हरी॥
सेठ—शान्तिकीर्ति वन मे मुनिराय, तिनके पास इन्हे ले जाय।
मुनि के दर्शन पाप पलाय, सकल साकरे छिन मे जाय॥

राजा ने वैसा ही किया और उन शान्ति चित्त शान्तिकीर्ति स्वामी को सेवा मे सबको ले गये ओर विनयपूर्वक सबने निवेदन किया। उन निर्विकार मुनिराज ने थोडा-सा पानी लेकर २४ और २५ वे जुगल काव्य पढके थोडा थोडा सब पर सीच दिया। वाहरे पवित्र जैन-धर्म! ओर वाहरे भक्तामर काव्य! वे सब रानियाँ जिनके जीवन की राजा आशा छोड चुके थे, सचेत हो गई तब राजा ने मुनिराज की वडी स्तुति की।

चोपाई—धन्य-धन्य स्वामी मति धीर, महिमा सागर गुण गम्भीर।
धन्य जैनमत इह ससार, सब पाखण्ड निवारण हार॥
धन्य वह गुरु धन्य वह देव, जाकी मुनि तुम कीन्हीं सेव।
जो मे जीभ सहस उचरौं, तोहू तुम गुण पार न परौं॥
अब स्वामी इतनो जस लेहु, मन्त्र एक हमहू को देहु।
जातें उतरों भवदधि पार, वहुरि न दुःख देखों ससार॥

मुनिराज ने राजा को कुछ काव्य सिखा दिये और धर्मोपदेश

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ
तुभ्यं नमः क्षितितलामल भूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय ॥ २६ ॥



२६ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्त तवाणं ।

मन्त्र—ॐ नमो ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रः ह्रः परजनशान्ति व्यवहारे जय जय कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—ऋद्धि मन्त्र द्वारा १०८ बार तेल मन्त्रित करके सिर पर लगाने और यन्त्र पास रखने से आधा सीसी आदि सिर के सब रोग मिट जाते हैं ।

धनमित्र की कथा

सुभद्र देश मे बरारा नाम की एक नगरी थी।

चौपाई—बन उपवन करि शोभित खची, सुरपुर मनहु विधाता रची।
नगर लोग सब ही धनवन्त, एक एकतें बड़े महन्त ॥ १ ॥
मन्दिर शोभित बने बजार, माणिक चौक सो परम उदार।
पौन छत्तीस प्रजा सब सुखी. अपने करम जोग कोउ दुःखी ॥ २ ॥

उस नगर मे धनमित्र नाम का एक भिखारी रहता था, नितान्त दरिद्रता के कारण वह झूठन भी खाने लगा था तो भी भर पेट भोजन नही मिलता था। एक दिन वह वन मे गया, एक मुनिराज के दर्शन हुए। बिचारे धनमित्र से नही रहा गया, वह उन महात्माजी के चरणो मे लेट गया और रोते-रोते कहने लगा—

धनमित्र—स्वामी ! कौन पाप हम करो, जा सेती इतनो दुःख भरो।
अति दरिद्र दावानल भयो, धर्म वृक्ष सब ही जर गयो ॥ १ ॥
अन्न वस्त्र बिन मैं बिललात, यह अतिकष्ट सहो नहिं जात।
तातें दुःख नाशन के काज, अब तुम मुनिवर करो इलाज ॥ २ ॥

मुनीश्वर—दारिद नाशन को जु उपाय, सुन हो भव्य कहों समझाय।
भक्तामर को काव्य सहाय, पढ़ो छबीसम प्रीति लगाय ॥ १ ॥
शील रतन पालो तुम सोय, ऋद्धि-सिद्धि जातै घर होय।
परतिय को कीजै परित्याग, अपनी तियमों ही अनुराग ॥ २ ॥

कृपालु मुनि महाराज ने उस जन्म दरिद्री धनमित्र को २६ वां काव्य सिखा दिया तो उसने शरीर शुद्धि करके जिन-मन्दिरजी मे चौकी पर बैठ कर मन्त्र जपना शुरू कर दिया। ज्यो-ज्यो रात्रि गिरती जाती थी, त्यो-त्यो ही धनमित्र को मन्त्र जपने मे रस आता था। जब जाप पूरा हो गया तब एक देवी नागकुमारी का सुन्दर रूप धारण करके धनमित्र के शील की परीक्षा करने को आई और कहने लगी—

देवी- एवमस्तु ! तथास्तु !! तेरे मन मनोरथ पूर्ण होंगे।

देवी आशीर्वाद देकर देवलोक को गई और धनमित्र घर को आया तो घर का कुछ निराला ही हाल देखा, वह पहचान भी न सका कि यह मेरा घर है। उसके शरीर के वस्त्र भूषण से लोग भी न पहचान सके कि यह धनमित्र ही है। पड़ोसियों से उन्होंने पूछा कि यहां कहीं पर धनमित्र नाम का भिक्षुक रहता था, उसका घर कौन है? लोगों ने उत्तर दिया कि इसी भूमि पर धनमित्रजी की झोपड़ी थी जो अचानक ऐसी उन्नत दशा को प्राप्त हुई है, इतने में उनकी सौभाग्यवती स्त्री जो सदा चिथड़े पहने रहती थी, उस समय सज-धज के निकल आई। धनमित्र ने सब हाल देवी की कृपाका सुनाया और धनमित्रजी से उनने पूरी मित्रता कर ली। ब्रह्मचर्याणुव्रतधारी धनमित्र ने पूजा प्रतिष्ठा शास्त्र दान-पुण्य मे बहुत-सा धन खर्च किया॥

धर्म के प्रसाद से मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त होती है, फिर इस क्षणिक और चञ्चल धन का प्राप्त हो जाना तो सहज-सी बात है।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषै रुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

आश्चर्य क्या गुण सभी तुझको समाए, अन्यत्र क्यो न मिली उनको जगह ही।
देखा न नाथ ! मुख भी तव स्वप्न मे भी, पा आसरा जगत का सब दोष ने तो ॥२७॥

भावार्थ—हे मुनीश ! यदि सम्पूर्ण गुणों ने सघनता से आपका आश्रय लिया और अनेक देवों के आश्रय से जिन्हें घमण्ड हो रहा है, ऐसे दोषों ने आपकी तरफ यदि स्वप्न में भी नहीं देखा तो इसमें अचरज भी क्या है ? कुछ नहीं।

२७ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्ततवाणं।

मन्त्र—ॐ णमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी चक्रेणानुकूलं साधय-साधाय शत्रूनुन्मूलयोन्मूलय स्वाहा।

विधि—ऋद्धि यन्त्र की आराधना और यन्त्र पास रखने से आराधक को कोई भी शत्रु हानि नही पहुँचा सकता।

मन्त्री—महाराज विनती चित्त धरो, चित्त की यह चिन्ता परिहरो।
याको अब हम करत इलाज, मनवांछित होंहि सब काज॥ २॥

मन्त्री अपने घर गया और कुशा के आसन पर बैठ कर पिशाचिनी का स्मरण करने लगा। थोडी ही देर मे पिशाचिनी ने प्रगट होकर मन्त्री मे आराधना का कारण पूछा—

मन्त्री—तुम माता इतनो जस लेहु, राजा के घर सन्तति देहु।
ऐसो माता करो उपाय, जाते राजा को दुःख जाय॥ १॥

देवी—श्रुतकीरति मुनिवर इक रहैं, इन्द्रिय पांच आपनी दहैं।
वे उपदेश देहिं कछु जबै, रानी के सुत उपजै तबै॥ १॥

यह सुन कर मन्त्री बहुत प्रसन्न हुआ और राजा हरिचन्द्र से पिशाचिनी सम्बन्धी सब वृत्तान्त कह सुनाया और राजा रानो को साथ लेकर मुनिराज की सेवा मे गये और उन्हे जो लगन लगी थी सो मुनिराज से निवेदन किया। तब मुनिराज ने श्री भक्तामरजी का २७ वा काव्य विधि समेत सिखा दिया। मुनिराज से आज्ञा लेकर वे घर आये और राजा ने रात्रि को मन्त्र की आराधना की जिससे धृत देवी ने प्रगट होकर कहा—

देवी—मांग-माग जो इच्छा होय, मन वाछित मे पुजऊ तोय।
जो वर मांगे सो वर लेहु, यामे मति मानों सन्देह॥ १॥

राजा—जननी! सुत की इच्छा मोय, ता कारण आराधी तोह।
तो प्रसादते सन्तति होय, जैन-धर्म व्रतधारी सोय॥ १॥

देवी—इतने काज बुलाई मोय, मागत लाज न आई तोय।
कितक बात तुम मागी राय, है सन्तति अति सुखदाय॥ २॥

देवी आशीर्वाद देकर चली गई और नौवे महीने महारानी चन्द्रमती के गर्भ से महा प्रतापवान कान्तिवान पुत्र रत उत्पन्न हुआ, जिसे पाकर राजा-रानी और सब लोग बहुत सुखी हुए।

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥ २८ ॥

रही हैं, अन्धकार के समूह को जिसने नष्ट किया है और नेत्र जिसके पास में है। अभिप्राय यह कि बादलों के निकट जैसे सूर्य शोभता है, वैसे ही आप अशोक वृक्ष के नीचे शोभायमान होते हैं। (भगवान के आठ प्रातिहार्यों में से पहिले प्रातिहार्य का वर्णन इस श्लोक में किया है।)

रूपकुण्डली की कथा

दक्षिण देश मे वरापुरी नगरी थी, वहां के राजा पृथ्वीपाल थे। उनके सात पुत्र और एक कन्या थी, कन्या बड़ी ही रूप और लावण्य सम्पन्न थी।

चौपाई—ता राजा के पुत्री एक रूप कला गुण परम विवेक।
रूपकुण्डली वाको नाम, रूप निरखि लज्जित भयो काम ॥ १ ॥
वदन चन्द्रमा के आकार, दृग हैं मृगिनी की अनुहार।
चन्पा कल भौहें दो वर्नी, दर्शन जोति लज्जित दामिनी ॥ २ ॥
कम्बु कण्ठ कटि है अति छीन, गजगामिन भामिन गतिलीन।
कोमलता-सी वाकी देह, कञ्चन वरन अङ्ग सब नेह ॥ ३ ॥
नव जोवन में पहुंची आय मनों विधाता रची बनाय।
अपनो रूप देख के सोय, तृणसम और गिने सब लोय ॥ ४ ॥

एक दिन वह सखियों को साथ लेकर बगीचे को गई और वहां नग्न दिगम्बर मुनिराज को देखा। उन्हें देख कर वह बहुत ही क्रोधित हुई और बहुत से निन्दा के वचन कहने लगी—

रूपकुण्डली—अरे निर्लज्ज वर्जा तैं लाज, रूप कुरूप धरे किहि काज।
मलिन अङ्ग अरु मुण्डी मूड महा अमङ्गलकारी मूढ़ ॥ १ ॥

उस नीच रूपकुण्डली ने रूप और सत्ता के अभिमान में आकर उन परम तपस्वी महात्माजी की घोर निन्दा की, परन्तु उन वन-विहारी सन्तजी ने एक शब्द भी नहीं कहा। पर हां! उस नीच

की पतित आत्मा पाप-कर्म के बन्ध से ढक गई। परिणाम भी यह हुआ कि थोडे ही दिनो मे वह रूपकुण्डली, कुरूपकुण्डली हो गई। वह उदम्बर कोढ से ग्रसित हो गई, शरीर के रोम खिर गये, हाथ पांव गल गये और वडी दुर्दशा हुई।

दोहा—तव कन्या मन मे लखो, मुनि निन्दा में कीन।
तातैं मैं कुष्टिन भई, महापाप सिर लींन॥
अव मैं मुनि पै जाय कें, क्षमा कराऊ दोष।
वे करुणा के सिन्धु है, तुरत करेंगे मोक्ष॥

वह रोती विलखती पश्चात्ताप करती हुई मुनि महाराज के पास गई और सव दुःख सुनाया। समदर्शी मुनिराजने उसे जैन-धर्म का उपदेश दिया और सम्यग्दर्शन अङ्गीकार कराके श्रीभक्तामरजी का २८ वा काव्य सिखा दिया। वह रूपकुण्डली मुनि महाराज को नमस्कार करके घरको चली आई और तोन दिन-रात काव्य आराधना की।

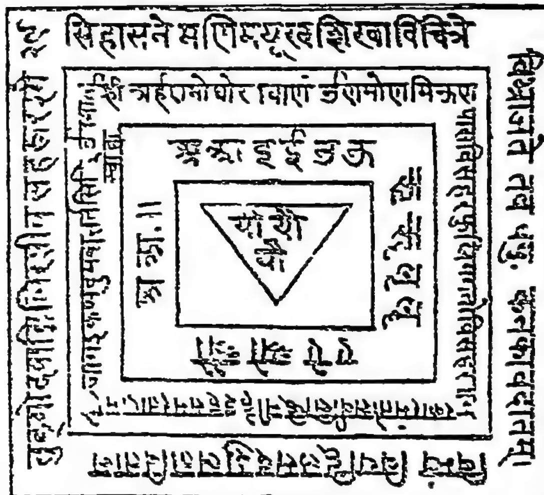
चौपाई—भोर होत उठ देखै जवै, देही सुन्दर दीसै तव।
मातु पिता जव लेख्यौरूप, तव मन मे आनन्दौ भूप॥

कन्यासे सव हाल जान कर राजा-रानी का जैन-धर्म पर और भी अटल विश्वास हो गया। उन्होने रूपकुण्डली का व्याह गुणशेखर नामके सद्गुणी राज-पुत्र के साथ करना चाहा, परन्तु उसके हृदय पर तो मुनिराजका उपदेश अङ्कित हो गया था, उसने विवाह नही कराया। तव वह पिहिताश्रव मुनि के पास अर्जिका के व्रत धारण करके आयुके अन्त मे सन्यासपूर्वक शरीर छोड़ कर स्वर्ग को गई।

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं
तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥ २९ ॥

सिहासन स्फटिक-रत्न जडा, उसी मे भाता विभो । कनककान्त शरीर तेरा ।
ज्यो रत्न-पूर्ण-उदयाचल शीशपै जा फैला स्वकीय किरणे रवि-विम्ब सोहे ॥२९॥

भावार्थ—हे भगवन्! मणियों की किरण पक्तिसे चित्र विचित्र सिंहासन पर आपका सुवर्णके समान मनोज्ञ शरीर सूर्यके समान शोभायमान होता है। कैसा है सूर्य? आकाशमे ऊचे उदयाचल पर्वतके शिखरपर किरण रूपी लताओं का जिसका चन्दोवा तन रहा है। अभिप्राय यह कि, जैसे उदयाचल पर्वत के शिखर पर सूर्य विम्व शोभा देता है, उसी प्रकार मणि जटित सिंहासन पर आपका शरीर शोभायमान होता है। (यह दूसरे प्रातिहार्य का वर्णन है)।



२९ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर तवाण ।

मन्त्र—ॐ ह्रीं णमो ऊण पास विसहर फुलिंगमन्तो विसहर नाम रकारमन्तो सर्व सिद्धिमी हे इह समरन्ताण मण्णे जा गई कप्प दुमच्च सर्व सिद्धि ॐ नम स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धि मन्त्र द्वारा १०८ बार पानी मन्त्र कर पिलाने से और मन्त्र पास रखने से दुखती हुई आँखे आराम होती है ।

रानी जयसेना की कथा

दक्षिण देश मे अलङ्कापुरी नाम की एक नगरी थी, वहां राजा जयसेन राज्य करते थे, वे सच्चे जैन-धर्मी और पापभीरु थे। उनकी स्त्री का नाम जयसेना था, वह रूपवान तो थी, परन्तु महा मिथ्यातिनी, सदा काम अग्नि से सन्तप्त रहती थी और जैन-धर्म से सदा विपरीत भाव रखती थी।

एक दिन ज्ञानभूषण मुनिराज ईर्यापथ शोधते हुए अलङ्कापुरी मे विहार करते हुए निकले। राजा जयसेन ने उन्हे तिष्ठ-तिष्ठ कह के पड़गाहा और नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया, परन्तु उनकी कुटिल रानी जयसेना को राजा की यह कृति न रुची।

दोहा—रानी अपने चित्त मे, निन्नो मुनिवर भेख।
कौन रूप इनने धरो, अम्बर हीन विशेख॥
देह मलिन निर्धन महा, मल आभूषण अङ्ग।
देखत लगै डरावनो, दर्शन याके भङ्ग॥

इत्यादि अनेक प्रकार मे अपने मन मे उस नीचनी ने उन महात्माजी की घोर निन्दा की। हा! राजा के डर से वह मुख मे यद्यपि वह मिष्ट भाषण करती थी, परन्तु अन्तरङ्ग की मलिनता से उसने नाना कर्मों का बंध किया। तीव्र पाप का फल भी कभी-कभी शीघ्र उदय हो जाता है, सो रानी जयसेना कुष्ट व्याधि से व्यथित हो गई। शरीर उसका इतना दुर्गन्धित हो गया था। राजा ने उसकी ऐसी दुर्दशा देख कर कहा—

राजा—मुनि ढिग जाय चरण तुम गहो, अपनो दुःख दीन ह्वै कहो।
वे करुणा-निधि हैं मुनिराज, करि हैं तेरो तुरत इलाज॥

रानी भी मन मे समझ गई कि यह मुनि निन्दा का फल है, वह पालकी मे बैठ कर श्री गुरु के पास गई और अपनी सब दशा सुनाई।

रानी—मोकों क्षमा करो मुनिराज, शरण गहे की राखहु लाज।
तुम दयालु करुणा निधिसार, भानु भाति तप तेज अपार ॥ १ ॥

साधु—देव शास्त्र गुरु भक्ति करेव, चऊ विधि दान सुपात्रहिं देव।
मुनि निन्दा नहिं कीजे भूल, यह सुख वेलि कुल्हाडी मूल ॥
तुम मेरो इक कह्यो करेव, अद्भुत मन्त्र कपट तजि लेव।
कमकुम केसर अरु घनसार, तासौं लिखियो थार मझार ॥
सो तुम थार लियो जल धोय, उत्तम जल असनापन होय ॥

मुनि के वचन सुन कर जयसेना बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने श्रीभक्तामरजी का २९ वा काव्य रुचिपूर्वक सीख लिया और घर पर पहुँच कर वैसी ही क्रिया की, जिससे सब देह नीरोग हो गई।

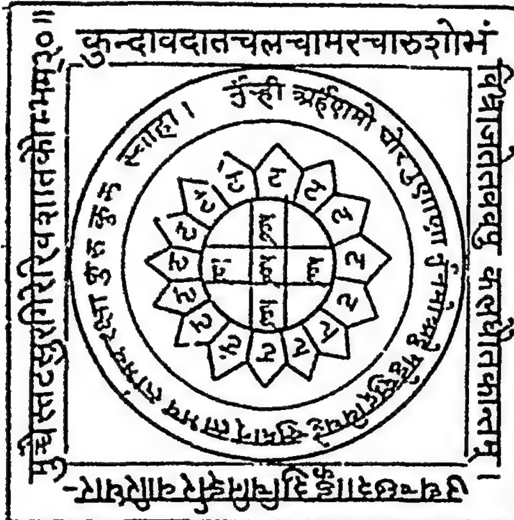
धन्य है इस पवित्र जैन-धर्म को कि, जिसके प्रसाद से रानी जयसेना की दिव्य देह हो गई।

कुन्दावदातचलचामर चारु शोभम्,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम्।
उद्यच्छशांकशुचिनिर्झरवारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

तेरा सुवर्णसम देह विभो! सुहाता, है श्वेत कुन्दसम चामर के उडे से।
सोहै सुमेरुगिरि, काँचन कान्तिधारी, ज्यो चन्द्रकान्तिधर निर्झर के बहे से ॥३०॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र! कुन्द के पुष्पों के समान उज्ज्वल और ढुरते हुए चमरों से शोभित आपका शरीर ऐसा शोभायमान होता है जैसा झरनों

की वहती हुई चन्द्रवत स्वच्छ जल धाराओं से सुवर्णमई सुमेरु का ऊंचा तट सुशोभित होता है। (यह तीसरे प्रातिहार्य का वर्णन है) ।



३० ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणाण ।

मन्त्र—ॐ णमो अट्ठे मट्ठे क्षुद्रावघट्ठे क्षुद्रान् स्तम्भय-स्तम्भय रक्षा कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—ऋद्धि मन्त्र की आराधना से और यन्त्र पास मे रखने से शत्रु का स्तम्भन होता है ।

छत्रत्रयं तव विभाति शशांककान्त-
मुच्चैःस्थितं स्थगित भानुकरप्रतापम् ।
मुक्ताफलप्रकरजाल विवृद्धशोभम् ।
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥ ३१ ॥

मोती मनोहर लगे जिनमे, सुहाते नीके हिमांशुसम, सूरजतापहारी ।
हैं तीन छत्र शिरपै अतिरम्य तेरे, जो तीन-लोक परमेश्वरता बताते ॥३१॥

भावार्थ—हे प्रभु ! चन्द्रमाके समान रमनीय ऊपर ठहरे हुए तथा निवारण किया है सूर्यकी किरणोंका प्रताप जिन्होंने और मोतियोंके समूह की रचनासे चढ़ी हुई है शोभा जिनकी, ऐसे आपकी तीन छत्र, तीन जगत्‌का परम,ईश्वरपना प्रगट करते हुये शोभित होते हैं। (इस श्लोक में चौथे प्रातिहार्य का वर्णन है)।



३१ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो गुण घोर परकमाण ।

मन्त्र—ॐ उवसग्गहर पासं वन्दामि कम्मघणमुक्क विसहर विसणिण्णासिण ।

मङ्गल कल्लाण आवास ॐ ह्री नम स्वाहा ।

फल—इस मन्त्र की आराधना से राज मान्यता होती है।

गोपाल ग्वाला की कथा

वच्छ देश मे श्रीपुर नाम का नगर था, वहा राजा रिपुपाल रहते थे, उनके चार रानिया थी, जो गृहस्थ-धर्म मे बडी सावधान थी।

चौपाई—रानी चार तासु की सती, एक एकतें बहु गुणवती।
अपने पति की आज्ञा करैं, शील माल आभूषण धरैं॥ १॥
पूजा दान विषे अति चाव, गुरु की सेवा हिरदै भाव।
व्रत विधान मे ते लवलीन, श्रवण पुराण सुनत मनमीन॥ २॥

उनके यहा एक ग्वाला रहता था, जो उनके गाय, भैस आदि की टहल किया करता था। एक दिन वह ग्वाला जङ्गल मे गया और उसको परम वीतरागी मुनि महाराज के दर्शन हुए। ग्वाला ने महात्माजी की बडी भक्ति-भावसे वैयावृत्ति की और कहने लगा—

ग्वाला—मोकों विधना बहु दुःख दयो, कारण कौन दरिद्री भयो ।
मो मुनिवर कहिये समझाय, मेरे मन को संशय जाय ॥ १ ॥
मुनि—सुनरे ग्वाला परम अज्ञान, तैं पूरव मुनि दियो न दान ।
बिना दिया पावै नहिं कोय, घर मे वस्तु धरी जो होय ॥
ग्वाला—ताको है कछु आज उपाय, कै यो जीवन योंही जाय ।
सो सब प्रगट बताओ हाल, तुम हो मुनिवर दीन दयाल ॥ २ ॥
मुनि—मिथ्या मति पावें नहिं कोय, ताको देहु जो श्रावक होय ।
ग्वाला—पहिले मुहि अपनो कर लेव, ता पीछे मुनिवर कछु देव ।
मुनि—प्रथमहि सुनो गोपालजी, तुम श्रावक व्रत लेव ।
अष्ट मूल गुण धारिकें, निश भोजन न करेव ॥
ग्वाला—हे मुनिवर ! गुरु देवजी, मैं नहिं जानत मूल ।
कृपया अब समझाइये, विगत-विगत कर तूल ॥
मुनि—आप्ते पञ्च नुति जीवे, दया सलिल गालन ।
त्रिमद्यादि निशाहारो हुम्वराणां च वर्जनं ॥

अर्थ—पञ्च परमेष्ठी पर श्रद्धा, जीव दया, जल गालन, मद्य, मांस, मधु, रात्रि भोजन और उदम्बर फलों (बर, पीपर, ऊमर, कठूमर और पाकर) का त्याग करना, श्रावक के मूलगुण है ।

साराश यह कि उन कृपालु मुनिराज ने सब श्रावक की क्रिया उसे समझा दी और श्रीभक्तामरजी के ३० और ३१ वे काव्य तथा विधि समझा दिये और कहा—

मुनि—जाहु वच्छ यह जपो तुरन्त, शुद्धासन प्रासुक एकन्त ।
रक्त वस्त्र माला रुद्राक्ष, दीजे अधिक अठोत्तर लाख ॥ १ ॥
मौन सहित नाशा दृग ध्यान, मन वचकाय त्रिविधि परवान ।
थिरचित राखि विसरि मतिजाय, बीसबिसे पढ़ियो चितलाय ॥ २ ॥

ग्वाला ने मुनि महाराज को नमस्कार करके चल दिया और उनकी बताई हुई रीति के अनुसार आराधना आरम्भ कर दी, जिसके प्रभाव से देवी ने प्रगट होकर कहा—

देवी—कहौ गुपाल सो कारण कौन, जा कारण बैठे धरि मौन।
जो चाहो सो मोतें लेहु, अब तुम सुख सों राज करेहु ॥ १ ॥
गोपाल—हे माता कछ जानत नाह, जो तुम पूजन हो हम पाह।
जो जानों इतनों जस लेहु, दारिद मेरो नाश करेहु ॥ २ ॥
देवी—इही देश हरी पुर गाव, तह हरि वर्ष नृपति कौ ठाव।
वाकी मीच निकट भई आय, वाकौ राज लेहु तुम जाय ॥ ३ ॥

फिर क्या था गोपाल ग्वाल वही पहुँचे तो सचमुच हरीपुर नरेश की मृत्यु हो गई थी। मन्त्रियो ने मतवाला हाथी छोड रक्खा था। जो उसे वश मे करेगा, उसी को राजा बनायेगे। गोपाल ने पहुँचते ही उसका कान बकरे के समान पकड लिया और हरीपुर की राजगद्दी पर बैठ कर राजसुख भोगने लगा।

गम्भीरताररवपूरितदिग्विभाग-
स्त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः।
सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

गम्भीर नाद भरता दश हो दिशा मे, सत्सग की त्रिजग को महिमा बताता।
धर्मेश को कर रहा जयघोषणा है, आकाश बीच बजता यश का नगारा ॥३२॥

भावार्थ—हे जिनेश! गम्भीर तथाऊ चेशब्दोंसे दिशाओंको पूरित करनेवाला, तीन लोकके लोगों को शुभ समागम की विभूति देने मे चतुर और आपका

यशगान करनेवाला दुन्दुभि, आप तीर्थङ्कर देव की जय घोषणा प्रगट करता हुआ आकाश में गमन करता है। (यह पाचवां प्रातिहार्य्य का वर्णन हुआ)।



३२ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो घोर बम्भचारिण।

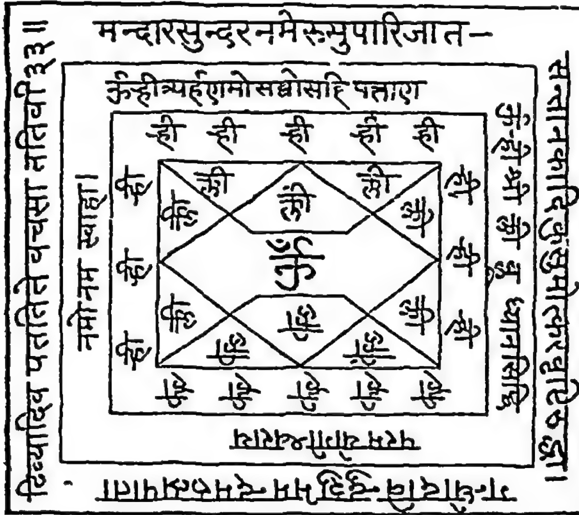
मन्त्र—ॐ णमो ह्रां ह्री ह्रौं ह्र सर्व दोष निर्वाण कुरुकुरु स्वाहा।

विधि—उक्त ऋद्धि मन्त्र द्वारा (कुँआरी कन्या के हाथ से कता हुआ) सूत मन्त्रित करके उसे गले मे बांधने से और यन्त्र पास रखने से सग्रहणी आदि पेट की सब पीडाए नष्ट होती हैं।

मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात-
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदबिन्दुशुभ मन्दमरुत्प्रपाता
दिव्यादिव:पतित ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

गन्धोद-विन्दुयुत मारुत को गिराई, मन्दारकादि तरुकी कुसुमावली की—
होती मनोरम महा सुरलोक से है वर्षा, मनो तव लब से बचनावली है ॥३३॥

भावार्थ—हे जिनराज! गन्धोदक की बूंदों से मांगलिक मन्द-मन्द पवन सहित ऊर्ध्वमुखी और देवीपुनीत मन्दार, सुन्दरनमेरू, सुपारिजात, सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के फलों की वर्षा आकाश से बरसती है, सो मानो आपके वचनों की वृष्टि ही हो रही है। (यह छट्टा प्रातिहार्य्य है।)



३३ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्ह णमो सव्वोसहि पत्ताण ।
मन्त्र—ॐ ह्री श्री क्ली ब्लू ध्यानसिद्धिपरमयोगीश्वराय नम स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धि मन्त्र से (कुँआरी कन्या द्वारा कताये हुए) सूत को मन्त्रित करके उसका गडा बाधने से और भाडा देने से तथा पास मे यन्त्र रखने से एकतरा, तिजारी, ताप आदि सब रोग नष्ट होते है । धूप गुग्गल को घृत मिली होनी चाहिये ।

मदनसुन्दरी की कथा

उज्जैन नगर मे राजा रतनशेखर राज्य करते थे । वे बडे ही नीतिवान और प्रजा पालक थे । उनकी पटरानी का नाम मदनसुन्दरी था, परन्तु पूर्व-जन्म मे उसने जैन-शास्त्रो का अनादर किया था, इससे उसने अत्यन्त कुरूप देह पाई थी । सिर पर खडे भूरे बाल, छोटा-सा ललाट, चपटी बहती हुई नाक, ओठो से बाहर निकले हुए दात, मोटी कमर, पतली जघा, बिवाई फटी एडिया, हाथी ऐसे कडे सर्वाङ्गरोम, फूली हुई गर्दन और पीप बहते कान होने से वह कहने मात्र की मदनसुन्दरी थी । इस पर भी गलित कुष्ट खासी तथा दमा उसकी दम लिये डालते थे । इससे कोई उसके पास खडा भी नही होता था । राजा ने नाना चेष्टाए की, पर सफलता नही हुई ।

तुम चरणम कौ शरण, गहौ मैं आयके। और कहाँ मैं जाऊ, तुम्हे प्रभु पायकें॥
लेहौ जिनवरधर्म, जु मुझ सङ्कट हरो। मुनि अपने परसाद, तिया नीकी करौ॥

तुम हौ दीन दयाल, अधिक कह भाखिये।
शरण गहे की लाज, चरण मोहि राखिये॥

मुनिराज—अच्छा मैं कल इसका उत्तर दूगा।

महात्माजी ने राजा से कह तो दिया, परन्तु उन्होने उलटी चिन्ता खडी कर ली। उन्हे यह शल्य चुभने लगी थी, जिससे जप, तप सब भूल गये थे, उनकी चिन्ता यही थी कि यदि रानी का रोग दूर नही हुआ तो जैन-धर्म की हँसी होगी। इसलिये वे सन्यास लेकर शरीर छोडने की भावना भा रहे थे कि पद्मावती देवी ने प्रगट होकर मुनिराज को नमस्कार किया और कहा—आप चिन्ता न करे। श्रीभक्तामरजी के ३२ और ३३ वें जुगल काव्य रानो को सिखा दोजिये, धर्म के प्रसाद से सफलता होगी। सवेरे रानी मदनसुन्दरी मुनिराज की सेवा करने गई तो महात्माजी ने श्रावक के व्रत-सहित युगल काव्य पढ़ा दिये। रानी ने घर जाकर उनका विधिपूर्वक जाप किया, जिससे उसका जैसा नाम था, वैसा हो रूप हो गया और समस्त रोग नष्ट हो गये।

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तर भूरिसंख्या
दीप्त्याजयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम्॥३४॥

अस्तावर की रुट प्रभामय वस्तु जीती, भामण्डल प्रबल है तव नाथ ऐसा।
नाना प्रचण्ड रवि-तुल्य सुदीप्तिधारी है जीतता शशि सुशोभित रात की भी ॥३४॥

भावार्थ—हे भगवन्त ! दैदीप्यमान सघन और अनेक सूर्यों के तुल्य आपके प्रभा मण्डल की अतिशय प्रभा तीनों लोकके प्रकाशमान पदार्थों की कान्ति को लज्जित करती हुई चन्द्रमा के समान सौम्य होने पर भी रात्रि को दूर करती है। अभिप्राय यह है कि प्रभा मण्डल की प्रभा यद्यपि कोट सूर्य के समान तेजवाली है, परन्तु आताप करनेवाली नहीं है, वह चन्द्रमा के समान शीतल है और रात्रि का अन्धकार नहीं होने देती। यह विरोधाभास अलङ्कार है। (यह सातवा प्रातिहार्य्य है।)

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते

ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहि पत्ताणं।

ॐ	प	च
न	मः	य
ह्रीं	ह्रां	म

३४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताणं।

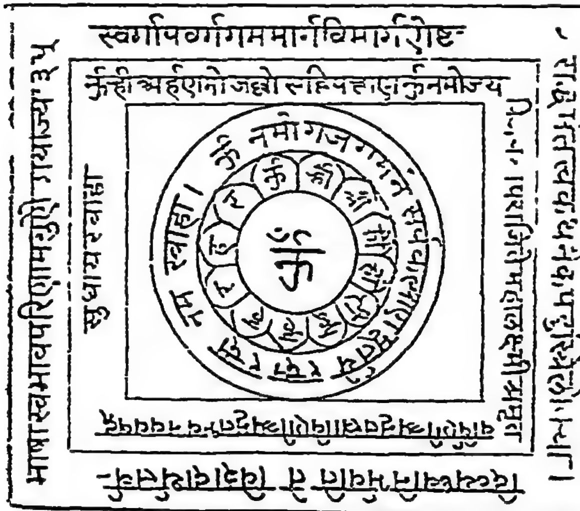
मन्त्र—ॐ णमो ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं ह्रौं पद्मावत्यै नमो नमः स्वाहा।

विधि—कुसुम के रंग से रंगे हुए सूत को १०८ वार ऋद्धि मन्त्र द्वारा मन्त्रित करके उसे गुग्गल की धूप देकर बांधने से और यन्त्र पास मे रखने से गर्भ का स्तम्भन होता है, असमयमे गर्भ का पतन नही होता।

स्वर्गापवर्गगममार्ग विमार्गणेष्टः
सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व-
भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥ ३५ ॥

है स्वर्ग मोक्ष-पथदर्शन को सुनेता स्द्धर्म के कथन में पटु है जगो के ।
दिव्यध्वनि प्रगट अर्थनयी प्रभो । है तेरी, लहे सकल मानव बोध जिससे ॥३५॥

भावार्थ—हे प्रभु ! स्वर्ग और मोक्ष-मार्ग दर्शानेमें इष्ट, उत्कृष्ट धर्मके तत्व कथन करनेमें एक मात्र श्रेष्ठ निर्मल अर्थ और समस्त भाषाओं रूप परिणमन करनेवाली आपकी दिव्य-ध्वनि होती है। (यह आठवा प्रातिहार्य्य है।)



३५ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो जद्योसहिपत्ताण

मन्त्र—णमो जय विजया पराजित महा लक्ष्मी अमृत वर्षिणी अमृत स्त्राविणी अमृत भव भव वषट् सुधाय स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धि मन्त्र की आराधना से यन्त्र पास रखनेसे दुर्भिक्ष चोरी, मरी, मिरगी राजभय आदि सब नष्ट होते है। इस मन्त्र की आराधना स्थानक मे करनी चाहिये और यन्त्र को पूजा करनी चाहिये ।

राजा भीमसेन की कथा

जगत् प्रसिद्ध वानारसी नगरी मे राजा भीमसेन राज्य करते थे, वे बडे ही न्यायशील थे ।

चौपाई—भीमसेन राजा राजन्त, भीर सेन सो जी बलवन्त ।
रूप विषै रतिपति अवतार, भेद विज्ञान कला गुण सार ॥
अपने धर्म विषै लवलीन, न्याय नीति मे परम प्रवीन ।
दण्ड बन्ध छेदन अरु मार, ताके राज्य नहीं ससार ॥

पूर्व असाता के विपाक से महाराजा भीमसेन एक भयकर रोग से पीड़ित हो गये थे, जिससे उनका शरीर नितान्त दुर्बल हो गया था, कान्ति उड़ गयी थी, अस्थिचर्म शुष्क गये थे और देखने मे बहुत डरावने दिखने लगे थे और भूख का पता नही था, नाना यत्न किये पर सब व्यर्थ हुए। राजा की यह दशा देख कर एक दिन उनकी रानी अधीर हो पड़ी, उन्हे साहस न रहा और व्याकुल होकर रोने लगी। मन्त्री लोग दौड़े आये और उन्हे धीरज बधाया।

मन्त्री—रानी सौं कहि भार, काहे सो दुःख करत है।
पूरब करम उदार, सो तो भुगते ही बनें॥
जतन करेंगे सार, मन्त्र जन्त्र वा औषधी।
तु सब धीरज धार, राजा नीके होयगे॥

एक दिन श्रुतकीर्ति मुनि महाराज विहार करते हुए बनारस नगरी मे आये, राजा उन्हे देख कर मुनिके चरणो मे लेट गये और अपने दुर्भाग्य का सब हाल कह सुनाया और निवेदन किया कि हे दीनदयाल! ऐसी कृपा कीजिये, जिससे यह व्यथा दूर होवे।

मुनि—विचार बात यह सुनि आय, जो दिन व्याधि दूर हो जाय।
सुनहु मन्त्र हमसों तुम लेहु, छिन मे व्यथा प्रथक कर देहु॥ १॥

मुनिराज तो विधिपूर्वक २४ और २५ वा काव्य सिखा कर विहार कर गये और राजा ने तीन दिन बड़ी कठिन तपस्या की तब चक्रेश्वरी देवी ने प्रगट होकर कहा—

देवी—राजन राज जो इच्छा होय, सो वो पूर्ण करूंगी तोय।
राजा—जो माता तुम होहु सहाय, तो मो व्यथा दूर हो जाय।

देवी—श्रीजिन के चैत्यालय जाय, आदिनाथ असनान कराय ।
वह गन्धोदक ल्यावहु अङ्ग, काम रूप ह्वै है सरवङ्ग ॥

देवी आशीर्वाद देकर निज-स्थान को गई और राजा ने वैसा ही किया, जैसा देवी कह गई थी । फिर क्या था ?

चौपाई—ले गन्धोदक लायो अङ्ग, मदन रूप पायो सरवङ्ग ।
लागत सात्र और छवि छई, कञ्चन वदन देह सब भई ॥ १ ॥
तब दौरे मुनिवर पै गये, कर नमोस्तु ढिग ठाढ़े भये ।
राजा मन उपजो वैराग, यह गुरु पाये पूरण भाग ॥ २ ॥
द्वादश भाति भावना भाय, लीनी दीक्षा शीश नवाय ।
अन्तकाल लीन्हो सन्यास, तजी देह कीन्हों सुर वास ॥ ३ ॥

दोहा—जैन-धर्म पाऊ सदा, दया प्राप्त है जाहि ।
तातैं पावे परम पद, अन्य धर्म मे नाहिं ॥ १ ॥

उन्निद्रहेमनवपंकजपुञ्जकान्ति,
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

फूले हुए कनक के नव पद्म के से, शोभासमान नख को किरण प्रभा से—
तूने जहा पग धरे अपने विभो । है नीके वहा विबुध पङ्कज कल्पते है ॥३३॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र ! फले हुए सुवर्ण के नवीन कमल समूह के सदृश कान्तिवान और चहुओर फलती हुई नखों की किरणों के समूह से सुन्दर ऐसे चरण आप जहा रखते है, वहा देवतागण कमलों की रचना करते हैं ।

ॐ उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ती

ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं ॐ ह्रीं

ॐ	ह्रां	ह्रीं	श्री
म	ह्रां	ह्रीं	क्लीं
च	ह्रः	ह्रूं	ह्रूं
म	य	र	ह

३६ ऋद्धि– ॐ ह्री अर्हं णमो विप्पोसहि पत्ताण।

मन्त्र—ॐ ह्री कलि-कुण्डदण्डस्वामिनआगच्छ-आगच्छ आत्ममन्त्रान् आकर्षय-आकर्षय आत्म-मन्त्रान् रक्ष-रक्ष परमन्त्रान् छिन्द-छिन्द मम समीहित कुरु-कुरु स्वाहा।

विधि—ऋद्धि मन्त्र की आराधना से और यन्त्र पास रखने से सम्पत्ति लाभ होता है। लाल पुष्प द्वारा १२००० जाप करना चाहिये और यन्त्र की पूजन भी करते रहना चाहिये।

सुरसुन्दरी की कथा

पटना नगरमे राजा धारिवाहन राज करते थे, उनकी रानी का नाम क्षत्रीसेना था, उनके सात पुत्र थे और एक कन्या थी, कन्या का नाम सुरसुन्दरी था, जैसा उसका नाम था, वैसी ही वह रूपवती और मनोहर भी थी, परन्तु जिन-धर्ममे अनुराग न होनेसे उसे बिना सुगन्धि का ही फूल कहना चाहिये। उसे अपने स्वरूप का बडा गुमान था, अपने रूप के गर्व के मारे वह औरो को तिनका के समान तुच्छ समझती थी। राजा-रानी की एक ही लडकी होनेसे उन्हो ने उसे लाडली भी बना लिया था, इससे वह उनके भी सिर चढ गई थी और उन दोनो की कुछ परवाह भी नही करती थी। ठीक है—

चौपाई—कन्या जिनहु चढाई मूड, तिनके पकरी गज की सूंढ।
जिन बेटींको सिख बुध दई, तिनकी कीरति घर-घर भई॥

यद्यपि सुरसुन्दरी बड़ी ढीठ थी, फिर भी माता-पिता को बहुत प्यारी थी। एक दिन वह पालकी मे चढ कर जिन-मन्दिर को गई और बहुत-सी सहेलियो को साथ ले गई। उस मूर्खा ने जिनराज की दिगम्बर प्रतिमा की बड़ी ही निन्दा की। वह कहने लगी— इनके न तो आभूषण हैं, न स्त्री ही है और तो क्या कपड़े तक नहीं हैं, जब इनकी खुद ही की यह दशा है तो ये दूसरो को क्या दे सकते हैं ? सुख की आशा से इन्हे पूजना मानो घृत के हेतु पानी का बिलोवना है। सुरसुन्दरी ने यह भी कहा कि देवताओं मे कृष्णजी को ही धन्य कहना चाहिये, जो दिव्य वस्त्र आभूषणों से सजे हुए हैं, गोपियो और ग्वालबाल मण्डली के साथ क्रीड़ा करते हैं और सोलह हजार रमणियों के साथ मौज करते हैं।

जिन-मन्दिर से निकल कर वह सुरसुन्दरी बाहर आई तो थोड़ी ही दूर पर एक परम दिगम्बर वीतरागी मुनिराज को देखा और उन्हे भी निर्लज्ज, म्लेच्छ, दरिद्र आदि अपशब्द कह डाले। वह पापिनी रूप के अभिमान मे ऐसी अन्धी हो गई कि अपने मुख मे से पान का उगाल उन निस्पृह महात्मा के ऊपर उगल दिया।

बहुत पाप कर्मो का विपाक तत्काल ही रस दे देता है और पूर्वोपार्जित शुभ-कर्म अशुभ रूप मे परिणत हो जाते हैं, सो सुरसुन्दरी को भी ऐसा ही हुआ। देव और गुरु की निन्दा करते ही तत्काल उसका सर्व शरीर कान्ति-प्रताप-हीन अत्यन्त कुरूप हो गया। जब वह घर आई तो सखियो ने जिनराज और मुनिराज की निन्दा का सब वृत्तान्त राजा को सुनाया। महाराज धारिवाहन पुत्री की यह

करतूत और दशा देख कर बहुत चिन्तित हुए, अन्त मे उन्हो ने नगर की श्रावक मण्डली की सम्मति से जिनराज की महान पूजा की और उन्ही मुनिराज की शरण मे गये। नमस्कार करने पर मुनिराज ने धर्म वृद्धि दी और कहा—राजन्! कुशल से तो हो?

राजा—गुरुदेव के चरण-प्रसाद से मङ्गल होगा।

मुनि०—ऐसी बात क्यो कही? खुलासा करके कहो।

राजा—मेरी सुरसुन्दरी नाम की कन्या ने जिनदेव और जिनगुरु की निन्दा करके अपने पाव पर अपने हाथ से कुल्हाड़ी मार ली है, वह नितान्त रोगी और कुरूपा हो गई है, कोई ऐसा उपाय कीजिए जिससे यह असाता दूर हो।

उन महात्माजी ने एक घड़ा पानी मंगवाया और 'उन्निद्र' आदि छत्तीसवां काव्य पढके कहा—इस पानी से बाई को स्नान कराओ।

सुरसुन्दरी ने अपनी कृति पर बहुत पश्चात्ताप किया और मन्त्रित जल से स्नान किया।

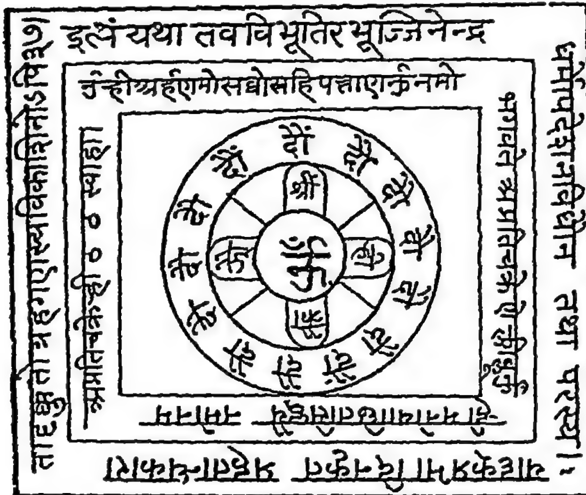
जिसके प्रसाद से उसका पहिले से भी सुन्दर उर्वशी जैसा रूप हो गया, उसकी जैनमत पर पूरी श्रद्धा हो गई, फिर उसने अपना विवाह नही किया और उन्ही मुनिराज के पास अर्जिका के व्रत लिये और आयु के अन्त मे समाधिपूर्वक शरीर छोड कर वह देवसुन्दरी देवलोक को गई।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य।

याद्दक्प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा
ताद्दक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥३७॥

तेरी विभूति इस भाति विभो। हुई जो, सो धर्म के कथन मे न हुई किसी को।
होते प्रकाशित, परन्तु तमिस्र हर्ता होता न तेज रवि तुल्य कही ग्रहो का ॥३७॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र! धर्मोपदेश के समय समवशरण में पूर्वोक्त प्रकार से जैसी विभूति आपकी हुई, वैसी अन्य हरिहरादि देवों की नहीं हुई, सो ठीक ही है, जैसी अन्धकार नाशक प्रभा सूर्य की होती है, वैसी प्रकाशमान तारागणों की कहा हो सकती है?



३७ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताण।
मन्त्र—ॐ णमो भगवते अप्रतिचक्रे ऐं क्लीं ब्लूं ॐ ह्रीं नमोवाछितसिद्धयै नमोनमः अप्रतिचक्रे ह्री ठ ठ स्वाहा।
विधि—ऋद्धि मन्त्र द्वारा २१ बार पानी मन्त्र कर मुख पर छीटा देने से ओर यन्त्र पास रखने से दुर्जन वश होता है, उसकी जीभ का स्तम्भन होता है। (बोल नही सकता)

सेठ जिनदास की कथा

भगवान पद्मप्रभुके गर्भ जन्म कल्याणक होनेसे कौशाम्बी नगरी जैन जनता में बहुत विख्यात है, वहा पर जिनदास नामके एक सेठ रहते थे। एक बार उन्हे व्यापार मे वडा घाटा लगा और सब सम्पत्ति खो वैठे। वेचारे वडे व्याकुल हुए और खूब रोये। उनकी ऐसी विकल

दशा सुन कर वहा के एक दूसरे सेठ सुदत्तजी ने सेठ जिनदासजी को अपने घर पर बुलवाया और बहुत धीरज बंधाया। उन्होने यह भी कहा—आपने कुछ अनाचार मे तो धन खोया नही है, जुआ और वेश्याबाजी भी नही की है, व्यापार किया है। यदि टोटा लग गया है तो क्या चिन्ता है, फिर कमायेंगे? इस प्रकार सम्बोधन करके उन्हे खासी पूजी की मदद दी।

सेठ जिनदासजी ने पुनः उद्योग किया, परन्तु भाग्यने उनको पुनः टक्कर दी और वे फिर से तङ्गहस्त हो गये, विरानी पूजी भी खो बैठे। निदान ये एक दिन स्वामी अभयचन्द मुनिराज के पास गये और भक्तिपूर्वक नमस्कार करके खडे हो गये। मुनिराज ने धर्मवृद्धि दी, कुशल-क्षेम पूछ कर बैठने को कहा और बहुत-सा धर्मोपदेश दिया।

सेठ जिनदास ने अवसर पाकर मुनिराज से अपने मन की व्यथा सुनाई और व्यापार सम्बन्धी सब वृत्तान्त सुनाया। उसे सुन कर मुनि महाराजने 'इत्थ यथा' आदि ३७ वा काव्य उन्हे सीखा दिया और उसे सिद्ध करने की सम्पूर्ण रीति बता दी।

सेठ जिनदास ने मन्त्र की विधिपूर्वक साधना की और १००८ बार जाप किया। आधी रात नही होने पाई थी कि वहा की वन देवी ने प्रगट होकर एक अमूल्य रत्न सेठ जी के हाथ मे रख दिया और कहा—

देवी—हे भव्य जिनदास! तु ने मुझे क्यो स्मरण किया है? तेरे मन मे जो इच्छा हो सो माग।

जिनदास—हे माता! मै महा दरिद्र हू, मुझे इस सङ्कट से बचाओ।

देवी ने जिनदास को एक अगूठी देकर कहा—इस अगूठी

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम्
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्टा भयंभवति नो भवदाश्रितानाम् ॥ ३८ ॥

दोनो कपोल झरते मद से सने है, गुञ्जार खूब करती मधुपावली है ।
ऐसा प्रमत्त गज होकर क्रुद्ध आवे, पावे न किन्तु भय आश्रित लोक तेरे ॥३८॥

भावार्थ—हे जिनराज ! झरते हुए मद से जिसके गण्डस्थल मलीन तथा चञ्चल हो रहे है और उन पर उन्मत्त होकर गुञ्जार करते हुए भौंरे अपने शब्दो से जिसका क्रोध बडा रहे है, ऐसे मतवारे और ऐरावत के समान हाथी को अपने ऊपर झपटता हुआ देख कर आपके भक्तों को भय नहीं होता है ।

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-

३८ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणचलीणं ।

मन्त्र—ॐ णमो भगवते महानागकुलोच्चाटिनीकाल-दष्टमृतकोत्थापिनी परमन्त्र प्रणाशिनी देविदेवते ह्रीं नमो नम स्वाहा ।

फल – ऋद्धि मन्त्र जपने, यन्त्र पास मे रखने से धन लाभ होता है ।

सेठ सोमदत्तजी की कथा

बीरपुर नगरमे राजा सोमदत्त राज्य करते थे । उनके सुखानन्द

नाम का एक ही पुत्र था, सो भी दुराचारी और जुआरी था, उसकी कुसंगति, दुराचार की परिणति देख कर वहां के निकटवर्ती महाराज ने सोमदत्त की सारी सम्पत्ति लुटवा दी और उन्हें गद्दी से उतार दिया। यहां तक कि उन्हें भोजन तक के लिये मुँहताज कर दिया।

प्रथम तो पुत्र कुपुत्र, दूसरे घर में दारिद्र्य होने से वे बड़े ही आकुलित रहते थे। बेचारे सोमदत्तजी एक दिन स्वामी वर्द्धमान मुनि की वन्दना को गये और अपनी सब दुर्व्यथा कह सुनाई। उनसे यह भी कहा कि ऐसी कृपा कीजिये जिससे मेरी दरिद्रता दूर हो। उन कृपालु मुनिराजने इन्हें श्रीभक्तामरजी का ३८ वाँ काव्य विधिपूर्वक सिखा दिया। उसकी उन्होंने भले प्रकार आराधना की और मन्त्र सिद्ध करके धन की चिन्ता से हस्तिनापुर गये।

वहाँ के राजा विजयसेन के यहाँ एक बड़ा मत्त हाथी था, जो बहुत ही प्रचण्ड और उद्दण्ड था। एक दिन वह महावतों की असावधानी से छूट पड़ा और शहर में प्रवेश करके घोर उपसर्ग करने लगा। सैकड़ों नर-नारियों को उसने चीर डाला, हजारों दूकानें कुचल डालीं, बहुत से वृक्ष उखाड़ कर फेंक दिये तथा लोगों का घर से बाहर निकलना असम्भव कर दिया। राजा विजयसेन और उनकी सेना ने नाना प्रकार की चेष्टाएं कीं, परन्तु वे सब व्यर्थ हुईं। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि, जो कोई हाथी को वश में करेगा, उसके साथ अपनी प्रिय पुत्री का ब्याह करूंगा और उसे चौथाई राज्य का स्वामी बनाऊंगा। यह शर्त जब सोमदत्त ने सुना तो उन्होंने 'श्च्योतन्मद' आदि ३८ वाँ काव्य पढ़ के हाथी का कान पकड़ लिया और उस पर सवार होकर दरबार में पहुँचे। राजा

वहुत प्रसन्न हुए, परन्तु इनका जाति-कुल ज्ञात न होने से कन्या न देकर मनमाना धन देने का निश्चय किया।

जब राजकुमारी मनोरमा की दृष्टि सोमदत्त पर पडी तो मदन के प्रकोप से वह विह्वल हो गई और अचेत होकर भूमि पर गिर पडी। ज्यो त्यो कर राजा विजयसेन हाथी की विपत्ति से मुक्त हुए थे कि, यह दूसरी आफत आ खडी हुई। उन्होने नाना उपचार किये, मूर्छा वढती ही गई। राजाने घोपणा करवा दी कि जो कोई मनुष्य इसे सचेत करेगा, उसे यह पुत्री और आधा राज्य दे दूगा। निदान सोमदत्तजी मनमे श्री भक्तामर काव्य का स्मरण करके राजा के साथ राजकन्याके पास गये। वह उन्हे देखते ही सचेत हो गई और वोली—यह भीड क्यो जमा हुई है ? मुझे स्नान कराओ, भूख लगी है।

यह चमत्कार देख कर मन्त्रियोने सोमदत्तजी का जाति-कुल आदि सारा वृतान्त पूछा। तव उन्होने सविस्तार हाल सुनाया, जिसे सुन कर राजा विजयसेनने अपनी प्रिय पुत्री मनोरमाका विवाह सोमदत्तजीके साथ कर दिया और अपना आधा राज्य उन्हे सौप दिया। राजा सोमदत्तजीने मनोरमा जैसी रानी पाकर वडा हर्ष मनाया, अपने सब कुटुम्ब को बीरपुर से हस्तिनापुर मे बुला लिया और श्रेणिक और रानी चेलनाके समान राज्य-भोग करके गृहस्थ-धर्म पालन करने लगे।

देखो! राजा सोमदत्त को भक्तामर के काव्य के प्रभाव से कुबेर जैसी सम्पदा और इन्द्रानी जैसी मनोरमा रानी प्राप्त हुई।

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-

मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः।

बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥ ३९ ॥

नाना करीन्द्रदल-कुम्भ विदार के की, पृथ्वी सुरम्य जिसने गजमोतियो से ।
ऐसा मृगेन्द्र तक चोट करै न उसीपै, तेरे पदादि जिसका शुभ आसरा है ॥ ३९ ॥

भावार्थ—हे प्रभु ! हाथियो के मस्तक फोडने से रक्तमे भींगे हुए मोती जिसने धरती पर विखरा दिये है और पकडने के लिये जिसने चौकडी वाधी है, ऐसा सिंह भी, आपके जुगल-चरण रूप पर्वतो का आश्रय लेनेवाले पुरुष का कुछ भी नहीं कर सकता है ।

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-

ॐ ह्री अर्हणमो वचवलीण ॐ

क्रौ क्रौ क्रौ क्रौ

ॐ	न	मो	भ	ग
	ह्रा	ह्री	क्षी श्री	व

३९ ऋद्धि—ॐ ह्री णमो वचवलीण ।

मन्त्र—ॐ णमो एषु दत्तेषु वर्द्धमान तव भय हर वृति वर्णयेषु मन्त्रा पुन स्मर्तव्या अतोना पर मन्त्र-निवेदनाय नम स्वाहा ।

फल—ऋद्धि मन्त्र जपने और यन्त्र पासमे रखने से सर्प का भय नही रहता ।

सेठ देवराजजी की कथा

श्रीपुर नगर मे एक सेठजी रहते थे, वे जवाहरात का व्यापार करते थे, उनका नाम देवराज था । उन्होंने स्वामी वीरचन्द्र मुनिराज के पाससे श्रीभक्तामर का अच्छा अभ्यास किया था । देवराज जी के

एक पुत्र भी था और वह पिता का बडा भक्त था, नाम उसका अमृतचन्द्र था। एक दिन देवराजने व्यापार के लिये रत्नद्वीप जाने की तैयारी की और प्रिय अमृतचन्द्र को पास मे बैठाकर कहा—घर की चौकसी रखना। इस पर पुत्रने विनय की कि मे ही परदेश चला जाऊगा, आप घर मे धर्म-साधन कीजिये। विद्वान देवराज ने प्रिय अमृतचन्द्र को नादान समझ कर विदेश नहीं जाने दिया, आप स्वयम् रत्नदीप को गया, साथ मे कुछ वणिक मण्डली भी थी।

चलते-चलते वे अकस्मात रास्ता भूल गये और ऐसे भयानक जङ्गल मे पहुँचे जहाँ आदमी का पता नहीं था। हाथी, रीछ, वदर, सर्प, सिंह आदिसे वह जङ्गल भरपूर था। एक विकराल सिंह जो मानो भयानक काल ही था, इनके सामने रास्ता रोक कर खडा हो गया। यह हाल देख कर साथके सब लोगो के होश उड गये और वे बडे घबडाये। तब धीर-वीर देवराज ने 'भिन्नेभकुम्भ' आदि ३६ वा काव्य का स्मरण किया। जिसके प्रभाव से वह प्रचण्ड सिंह कुत्ते के समान पछ हिलाता हुआ इन पर भक्ति दर्शाने लगा, वह बहुत से गज मुक्ता बटोर कर लाया और सेठ देवराज जी के सन्मुख रख दिये। सेठ देवराज ने सिंह से कहा—तुम हिंसक जीव हो, प्राणियो का घात करते हो, यह तुम्हारे लिये बडी निन्दा की बात है। इस प्रकार धर्म का उपदेश सुनने से उसे जाति स्मरण हो गया और सम्यग्दर्शन प्रगट हो गया, जिससे उसका चित्त बडा ही नम्र हो गया, यहा तक कि उसने उस दिन से फिर कहीं हिंसा नहीं की।

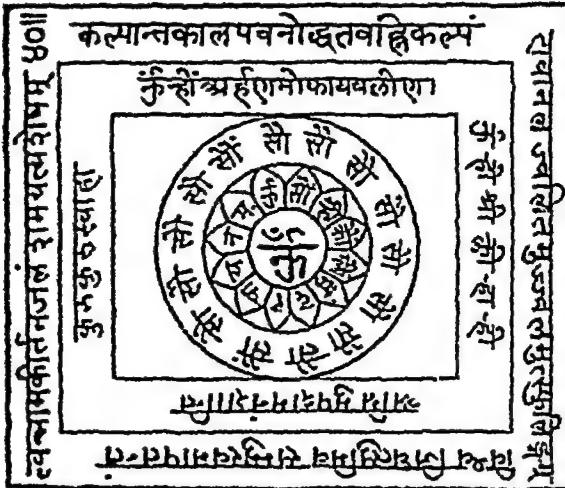
सेठ देवराज और उनके साथियों ने रत्नदीप मे पहुँच कर वहां क्रय विक्रय करके घर का रास्ता लिया और सकुशल श्रीपुर पहुचे।

सिंहके समागमसे मृत्यु टल गई, जान कर सब ने बड़ी खुशी मनाई। जिनराज की महापूजा भावपूर्वक की और धर्म की खूब प्रभावना फैलायी। वीरचन्द्र स्वामी की वन्दना को गये और उन्हें सब समाचार सुनाया, तब मुनि महाराज ने कहा—यह तो सामान्य बात है, श्रीभक्तामरजी के प्रभाव से कोटि-कोटि विघ्न क्षण भर में टल जाते हैं। पश्चात् सेठ देवराज ने सिंह के दिये हुए अच्छे-अच्छे गजमुक्ता वहां के राजा श्रीपाल की सेवा में भेंट किये और सिंह के उपद्रव का सब हाल सुनाया, जिससे राजा और दरबार के लोगों पर जैन-धर्मका बड़ा प्रभाव पड़ा और सबने जैन-धर्म अङ्गीकार किया।

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं ।
दावानलंज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम्
विश्वं जिघत्सुमिव सन्मुखमापतन्तं
त्वन्नामकीर्त्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥ ४० ॥

कालें उठे चहुं उड़ें जलते अङ्गारे, दावाग्नि जो प्रलय वह्नि समान भासे।
संसार भस्म करने हित पास आवे त्वत्कीर्तिगान गुन वारि उसे शमावे ॥ ४० ॥

भावार्थ—हे प्रभु! प्रलयकाल की पवन से उत्तेजित हुई अग्नि के सदृश तथा ऊपर को उड़ रहे फुलिंग ऐसी जलती हुई उज्ज्वल और सम्पूर्ण संसार को नाश करने की मानो जिसकी इच्छा ही है ऐसी सन्मुख आती हुई दावाग्नि को आपके नाम का कीर्तन रूप जल शान्त कर सकता है।



४० ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो कायवलीणं ।

मन्त्र—ॐ ह्री श्री ह्रां ह्री अग्नि उपशम कुरु-कुरु स्वाहा ।

विधि—ऋद्धि मन्त्र जपने से ओर यन्त्र पास रखने से अग्नि का भय मिट जाता है ।

सेठ लक्ष्मीधरजी की कथा

पोदनपुर नगर मे लक्ष्मीधर नाम के एक सेठ रहते थे, जैसे वे नाम के लक्ष्मीधर थे, वैसे लक्ष्मी से सम्पन्न भी थे। जैन-धर्म पर उनका दृढ़ विश्वास होने से जिन-पूजा, सुपात्र दान और सयम समय मे सदा सावधान रहते थे। उन्हों ने भक्तामरजी के काव्य सकल संयमी मुनिराज के पास विधिपूर्वक सीखे थे। उनके पुत्र का नाम गणधर था, वह माता-पिता का वडा आज्ञाकारी और सुशील था।

एक दिन सेठ लक्ष्मीधरजी ने अपने प्रिय पुत्र गणधर को पास में बैठा कर कहा—न्यायपूर्वक उद्योग कर के धन सचय करना गृहस्थों का कर्तव्य है, क्यों कि ससार के निर्वाह का दारोमदार धन ही पर निर्भर है, इसलिये वाणिज्य के हेतु मै सिंहलद्वीप को जाता हू। पहिले तो प्रिय पुत्र गणधर ने स्वयम् विदेश जाने की पिता से प्रार्थना की, परन्तु पिता की गहन अभिलापा देख वह चुप हो गया।

साराश यह है कि—उभय की सम्मति से सेठ लक्ष्मीधरजी ने विदेश जाने की तैयारी की और बहुत-सी वणिक मडली के साथ माल की गाडियाँ घोडे आदि से भरवा कर सिंहलद्वीप को चल दिये। रास्ते मे एक जगह डेरा डाले पडे हुए थे रसोई बना रहे थे कि अकस्मात उनके डेरे मे आग लग गई, चहुँ ओर घासके झोपडे होने से अग्निने बडा भयङ्कर रूप धारण किया, लक्षावधि रुपयों का माल बिलकुल जल कर सर्वनाश हो जाने में किंचित सन्देह नहीं था। सब व्यापारी मण्डली ने रुदन और हाहाकारका कोलाहल मचा रक्खा था।

पर सेठ लक्ष्मीधर ने धीरज नहीं छोडा, उन्हो ने बडे गम्भीर भाव से स्नान करके स्वच्छ आसन पर कमलासन अङ्गीकार किया और 'कल्पान्तकाल' आदि ४० वा काव्य का १०८ बार जाप किया जिसके प्रसाद से चक्रेश्वरी देवी प्रकट हुई और उसने एक छोटे से गिलास भर पानी देकर कहा—इसे जहा-तहा सींच दो, ऐसा कह देवी जिन-धाम को चली गई। लोगों ने वैसा ही किया, जिससे तुरन्त अग्नि शान्त हो गई। लोग यह चमत्कार देख बहुत विस्मित हुए और सब ने सेठ लक्ष्मीधरजी का बडा उपकार माना।

पश्चात् वे सब मनोवाछित स्थान पर गये और अपने देश से जो वस्तु ले गये थे, उन्हें बेच कर और वहा को वस्तुए खरीद कर अपने घर को लौट आये। घर पर पहुँच कर सब ने पूजा दान-पुण्य मे बहुत द्रव्य व्यय किया। एक दिन वे वहा के राजा माणिक चन्द्र जी की सेवा मे गये, उन्हों ने प्रचण्ड अग्नि बढने और उनके शान्त होने का वृतान्त सुनाया। उसे सुन कर राजा ने यह उत्तर दिया कि इस में आश्चर्य की बात ही क्या है, धर्म के प्रसाद से क्या नहीं होता? धर्म की

ऐसी ही महिमा है कि कठिन से भी कठिन कार्य सुगमता से सिद्ध हो जाते हैं।

रक्तेक्षणं समदकोकिल कण्ठनीलं।
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्॥
आक्रामति क्रमयुगेण निरस्तशङ्क—
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्यपुंसः॥ ४१॥

रक्ताक्ष क्रुद्ध पिककण्ठ-समान काला, फुकार सर्प फण को कर उच्च धावे।
नि शाक हो जन उसे पग से उलांघे, त्वन्नाम-नागदमनो जिसके हिये हो॥ ४१॥

भावार्थ—जिस पुरुष के हृदय मे आपके नाम की नागदमनी जडी है वह पुरुष, लाल नेत्रवाले, मदोन्मत्त, कोयल के कण्ठ समान काले, क्रोध से ऊपर को उठाया है फण जिसने और डसने के लिये झपटते हुये साप को अपने पैरों से कुचलता हुआ चला जाता है।

रक्ते क्षण समदकोकिलकण्ठनील

ॐ ह्री अर्हं णमो खीर सवीण ॐ नमो

४१ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो खीरसवीण।

मन्त्र—ॐ नमो श्रां श्रीं श्रूं श्रः जलदेविकमलेद्महद्-निवासिनी पद्मोपरिसिं-स्थिते सिद्धि देहि मनो-वाछित कुरु-कुरु स्वाहा।

विधि—ऋद्धि मन्त्र जपने से और यन्त्र पास रखने से राज दरवार मे सम्मान होता है और झाडने से सर्प का विष उतरता है।

नगरके बाजीगरों को बुलाया और डाट लगा कर पूछा तो उस बाजीगर ने जो सेठ गुणदत्तजी को सांप दे गया था. तब सच्चा हाल कह सुनाया। पश्चात् राजाने गुणवंता की सासू को फटकार लगाई तो उसने भी स्वीकार किया कि गुणवंता को मार डालने का बेशक निश्चय किया गया था। उसने यह भी कहा—

चौपाई—छिन में सांप छिनक में माल यह कौतक कैसो भूपाल ?

राजा चन्द्रपाल ने श्रीमती गुणवंता से पूछा—यह चमत्कार किस मन्त्र के प्रसाद से होता है ? तब उस पतिव्रताने 'दुर्भेक्षण आदि मन्त्र पढ़ा तो पिटारे का सांप फिरसे पुष्पमाला हो गया। उसने थोड़ा पानी इसी मन्त्र से मन्त्रित करके अपने पति के ऊपर छिड़क दिया, जिससे वह प्रसन्न होकर उठ बैठा। इस से सब पर जैन-धर्म का बड़ा प्रभाव पड़ा और राजाके साथ सब ने जैन-धर्म को अङ्गीकार किया।

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनाद-
माजौबलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धम् ।
त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥ ४२ ॥

घोड़े जहां हिनहिने, गरजे गजाली. ऐसे महा प्रबल सैन्य धराधिपो के—
जाते सभी बिखर हैं तव नाम गाए, ज्यो अन्धकार, उगते रवि के करो से । ४२ ।

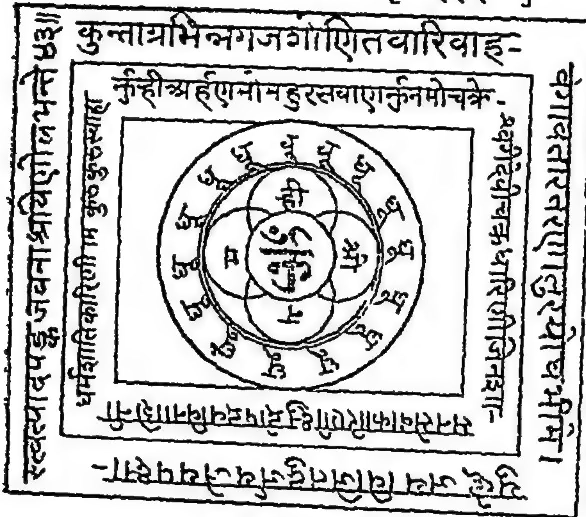
भावार्थ—हे जिनराज ! आपके नाम का कीर्तन करने से लड़ाई में घोड़ों और हाथियों के जिसमें भयानक शब्द हो रहे हैं, ऐसी सेनाएं भी उदय को प्राप्त हुए सूर्य की किरणों से नष्ट हुए अन्धकार के समान शीघ्र ही नाश को प्राप्त होती हैं।

४२ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवाणं।

मन्त्र—ॐ नमो णमिऊण विसहर विषप्रणाशन रोग शोक दोष ग्रह कल्पद्रुमच्च-जाई सुहनामगहणसकलसुहदे ॐ नम स्वाहा।

फल—ऋद्धि मन्त्र की आराधना से और यन्त्र पास रखने से युद्ध का भय नहीं होता।

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
स्त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥ ४३ ॥



४३ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्ह णमो महुरसवाण।

मन्त्र—ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी जिनशासन सेवा कारिणी क्षुद्रोपद्रव-विनाशिनी धर्मशान्तिकारिणी नम कुरु कुरु स्वाहा।

फल—ऋद्धि मन्त्र की आराधना और यन्त्र पूजन स सब प्रकार का भय मिटता है और राजा द्वारा धन लाभ

राजा गुणवर्मा की कथा

भारतवर्ष मे मथुरा नगर प्रसिद्ध है, किसी समय वहा राजा रणकेतु राज्य करते थे। वे थे तो राजा, परन्तु धर्म और नीति का उन्हे कुछ भी ज्ञान न था। एक दिन उनकी स्त्रीने कहा—आपका छोटा भाई गुणवर्मा आपसे द्वेष भाव रखता है, आप तो इस तरफ कुछ ध्यान ही नही देते, पर वह आस्तीन का साप है, कभी न कभी आपको डस लेगा अर्थात् आपको राज्य से वञ्चित कर देगा।

यद्यपि गुणवर्मा बडा सुशील, ज्येष्ठ भाई का बडा आज्ञाकारी और जिन-भक्त था, श्रुतकीर्ति मुनिराज के समीप विद्याभ्यास करने और श्रीभक्तामरजी आदि मन्त्र शास्त्रोकी क्रियाएं सीखनेमे उसका समय जाता था, राज्य की ओर उसका ध्यान भी न था। परन्तु राजा रणकेतु के हृदयमे उनकी मूर्ख रानी की बात ऐसी समा गई कि उन्हे गुणवर्मा-सा भाई भी शत्रु रूप भासने लगा और वे उसे

घर से निकालने की चिन्ता में रहने लगे। एक दिन वे अपने मन्त्री से कहने लगे—आप गुणवर्मा को देश निकाला दे दें, ऐसा किये बिना मुझे चैन नहीं है। राजा रणकेतु की ऐसी घृणित बात सुन कर मन्त्री बड़े विस्मित हुए और राजा से कहने लगे—

चौपाई—भाई भिन्न न कीजै राय, भाई बिना सकल पत जाय।
भाई बिना अकेले होय, वाकी बात न माने कोय ॥१॥
भाई बिना होय रनहार, ज्यों भुज फूटें मारिय मार।
जित तित परे लेय सब फाय, भुजा फटे ज्यों दुर्गति होय ॥२॥
रामचन्द्र लछमण दो बीर, दो मिलि बाध्यौ सागर नीर।
दोउ मिलि लङ्का गढ़ लियौ, राज विभीषण को सब दियौ ॥३॥
जो दोउ होते नहिं बीर, एक कहा लों बाधो धीर।
रावण काट विभीषण लियो राज्य खोय जग अपजस लियो ॥४॥
एक एक ग्यारह हो जाहिं, यह कहवत सबरे जग माहिं।
तातें तुम जिन ऐसी करो, मेरो मन्त्र हिये में धरो ॥५॥

अभिप्राय यह कि मन्त्रीने राजा को बहुतेरा समझाया, परन्तु राजाके मनमें एक भी न भाया, वे उलटे मन्त्री पर नाराज हो पड़े। अन्तमें राजाने गुणवर्माने कह दिया कि, हमारे देशमें निकल जाओ। राजाको इतना कहनेको देर लगी, परन्तु गुणवर्मा को घर छोड़नेमें देर नहीं लगी, वे उनके देशसे दूर वन की गुफामें निवास करने लगे।

एक दिन राजाने अपने नौकरों द्वारा गुणवर्मा की खबर मगाई तो उन्होंने समाचार दिया कि वे वन में रहते हैं और एकान्त में भगवद्-भजन करते हैं। यह सुन कर राजाने और ही कल्पना की। वह यह कि, मेरे मार डालनेको कोई जादू टोना सिद्ध कर रहा है, इसलिये वे उसे मार डालने के लिये बड़ी भारी सेना लेकर वहां गये।

जब गुणवर्माने सजी हुई सेना राजा रणकेतु की देखी तो उन्होने ४१ और ४३ वे युगल काव्य की आराधना की जिससे चक्रेश्वरी देवी ने प्रगट होकर कहा —तेरे मन मे जो इच्छा हो सो कह ।

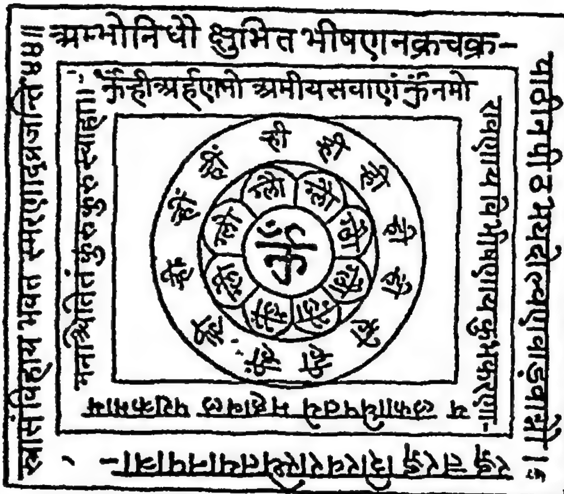
चौपाई—गुणवर्मा भाषै सुन माय, दीजे सेना मोहु बनाय।
एक बार भाई से लडो, ता पीछे सजम आदरौं ॥ १ ॥

तब तो देवीने चतुरङ्गिणी सेना सजा दी । दोनो ओरसे रणभेरी बजने लगी, खूब घोर युद्ध हुआ और विक्रिया के बल से राजा रणकेतु को बाध लिया । निदान गुणवर्माने देवीसे प्रार्थना की कि ये मेरे ज्येष्ठ भ्राता है, इनका अनादर नही होना चाहिये । देवी रणकेतु को छोड कर निज-धामको चली गई और रणकेतु पश्चात्ताप करते राजस्थान को चले गये, विद्वान् गुणवर्मा ने जिन-दीक्षा ली और आयु के अन्त मे समाधिमरण करके स्वर्ग को गये ।

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतःस्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥

है कालनृप करते मकरादि जन्तु, त्यो वाडवाग्नि अति भीषण सिन्धु मे है ।
तूफान मे पड गये जिनके जहाज, वे भी प्रभो । स्मरण से तव पार होते ॥ ४४ ॥

भावार्थ—हे जिनराज ! आपका स्मरण करनेवाले पुरुषों के बड़े-बड़े मगरमच्छ और भयङ्कर बडवानल से क्षुभित समुद्र मे पडे हुए जहाज पार हो जाते है।



४४ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्ह णमो अमीयसवाण।

मन्त्र—ॐ नमो रावणाय विभीषणाय कुंभकरणाय लङ्काधिपतये महाबलपराक्रमाय मनश्चिन्तित कुरु-कुरु स्वाहा।

फल—ऋद्धि मन्त्र की आराधना से और पास मे यन्त्र रखने से आपत्ति मिटती है, समुद्र मे तूफान का भय नही होता, समुद्र पार कर लिया जाता है।

सेठ ताम्रलिप्त की कथा

अपने भरतखण्ड के दक्षिण प्रान्तमे जैन-धर्म का अच्छा प्रचार था। वहां किसी समय तामली नगर मे ताम्रलिप्त नाम के एक सेठ रहते थे, जैन-धर्म मैं उनकी अच्छी रुचि थी और चन्द्रकीर्ति मुनिराजके पास भक्तामर काव्य मन्त्रोका अध्ययन किया करते थे।

एक दिन उन्होने विदेश जाने की तैयारी की और बहुत-सा माल जहाज मे भरा कर वहुत-सी वणिक मण्डली के साथ रवाना हो गये। वे सब पवित्र जैन-धर्म के धारक थे। पञ्च परमेष्ठी और णमोकार मन्त्र का स्मरण करते हुए सकुशल मनोवाछित स्थान पर पहुँच गये, धर्म के प्रसाद से कोई विघ्न नही आया। यहा से जो वस्तुए वे ले गये थे, वहा वेच दी और वहा से बहुत से हीरा जवाहिरात खरीद कर जहाज भर लिया

गई। उसने प्रतिज्ञा की कि, मैं आज से हिंसा नही कराऊगी। चक्रेश्वरी ने कहा—तुम सेठजी से कहो मैं उनकी आज्ञाकारिणी हू। जलवासिनी ने सेठजी से बहुत ही नम्र निवेदन किया तो कृपालु सेठजी ने क्षमा करने के लिये कह दिया। चक्रेश्वरी देवी जल देवी को छोड और निज धाम को चली गई। सेठ ताम्रलिप्त सकुशल घर पर आये और अपने कुटुम्ब परिवार से सानन्द मिले।

उद्भूत भीषणजलोदरभारभुग्नाः
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः।
त्वत्पादपंकजरजोऽमृतदिग्धदेहाः
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४५॥

अत्यन्त पीडित जलोदर-भार से है दुर्दशा, तज चुके निजजीविताशा।
वे भी लगा तव पदाब्ज-रज सुधा को होते प्रभो। मदन-तुल्य सुरूप देही ॥ ४५ ॥

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्ना

ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाण-

ॐ	ह्रीं	भ	ग
व	ती	य	क्ष
ची	क्ष	श	र्क्ष
ह	स्फ	ह	ट

४५ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं।

मन्त्र—ॐ नमो भगवतो क्षुद्रोपद्रवशान्तिकारिणी रोग-कष्टज्वरोपशम शान्तिं कुरु-कुरु स्वाहा।

फल—ऋद्धि मन्त्र की आराधना से और यन्त्र पास रखने से महान से महान भय मिटता है, प्रतापप्रकट होताहै, रोग नष्ट होता है और उपसर्ग आदि का भय नही रहता।

भावार्थ—हे जिनराज! भयानक जलोदर रोग से जो पीडित हैं और शोचनीय अवस्था को प्राप्त होकर जीवन की आशा छोड बैठे हैं, ऐसे मनुष्य आपके चरण-कमल के रज रूप अमृत से अपनी देह लिप्त करके कामदेव के समान सुन्दर रूपवाले हो जाते हैं।

दोहा—अब वन्दों चक्रेश्वरी, देवी मन वचकाय।
ज्यों प्रसन्न सबको भई, त्यों मम होहु सहाय ॥ १ ॥

राज-पुत्र हँसराज की कथा

मालवा प्रान्त मे उज्जैन नगर बहुत मनोहर और विस्तृत है। वहा किसी समय राजा नृपशेखर राज्य करते थे। उन्हे रानी विमलमती के शुभ सयोग से एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। बालक जन्म से ही बहुत रूपवान और सुशील था, उसका नाम हँसराज था। जब प्रिय हँसराज सात वर्ष का हुआ तो पिता ने पण्डित मनोहरदासजी की सेवा मे विद्याध्ययन के लिये उसे भेजा और विद्वान् पुरोहितजी ने बड़े चाव से उसे विद्याभ्यास कराया।

गीतिका—सूत्र शास्त्र सिद्धान्त ज्योतिप, सकल याहि पढाई है।
व्याकरण अमर निघटु पिङ्गल, छन्द बद्ध सिखाई है ॥
अरु बाण मोचन पर बचावन, रन भिरन जोधन तनी।
जल तरण पर के मन हरण, सो दई विद्या अति घनी ॥ १ ॥

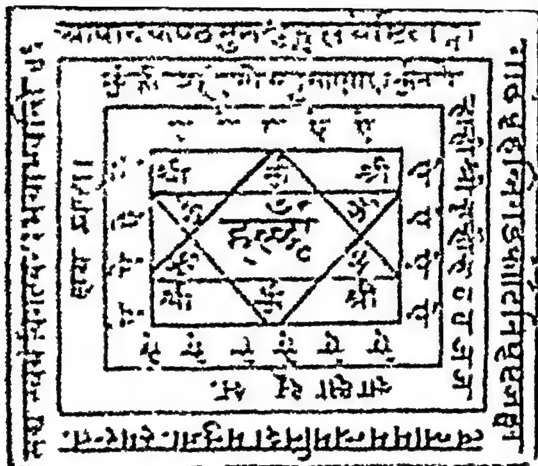
बालक हँसराज विद्या मे सम्पन्न होकर घर आया ही था कि दैवयोग से उसकी पूज्या माता विमलमती का स्वर्गवास हो गया। इस वियोग से पिता पुत्र दोनो अत्यन्त दुःखी हो गये। बहुत रोये, बहुत आर्तध्यान किया। निदान राजा नृपशेखर ने अपना दूसरा विवाह कर लिया।

राजा की इस नव्य भार्या का नाम कमला था, परन्तु यह पूर्व की विमलाके सदृश नहीं थी। यह वडी कुटिल स्वभाव और निर्दयी थी। समय पाकर कमला रानी ने भी श्रीचन्द्र नाम का पुत्र प्रसव किया। योग्य होने पर राजाने श्रीचन्द्रको भी विद्याध्ययन कराया। परन्तु कमलाके हृदयमे वडा ही द्वेषभाव रहता था। वह यही सोचा करती थी कि यदि हँसराज मर जाता तो वडा कटक टल जाता।

एक समय राजा नृपशेखर तो दिग्विजय को निकले और प्रिय पुत्र हँसराज को कमला रानी के भरोसे छोड़ गये। तव तो रानी कमला को अपने मन की वात पूरी करने का अच्छा अवसर मिल गया। उसने भोजनमे दिनाई मिला कर हँसराज को खिला दिया, जिससे स्वल्पकाल ही मे हँसराज का शरीर पीला पड गया। रग-रग मे जहर का असर हो जाने से वे नितान्त अशक्त हो गये और वात, कफ, खांसी से पीडित रहने लगे। यद्यपि राजकुमार अपनी विमाता की यह करतूत समझ गये पर उससे वे कह भी क्या सकते थे और उससे लाभ भी क्या था? निदान वे कुटिला कमला के कुसङ्ग मे रहना उचित न समझ कर घर से निकल पडे और वडे कष्ट सहते-सहते कठिनाई से नागपुर पहुँचे।

वहां के राजा मानगिरि के यहा कलावती नाम की एक वहुत सुशिक्षिता और रूपवती कन्या थी। एक दिन राजा ने पुत्री से पूछा—हे वेटी! तुम हमारे घर मे सुख चैन करती हो, सो हमारे प्रसाद से करती हो या अपने भाग्य से? इस पर बुद्धिमती कलावती ने उत्तर दिया कि—

आपादकण्ठमुरुशृङ्खल वेष्टिताङ्गा.
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः ।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥ ४६ ॥



राज-पुत्र रणपाल की कथा

आर्यावर्त्त के प्रसिद्ध नगर अजमेरमें किसी समय राजा उदयपाल राज्य करते थे, वे बड़े न्याय-शील और धर्मात्मा थे। पुण्योदय से उन्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई उसका नाम उन्होंने रणपाल रक्खा था। राजा उदयपालने प्रिय रणपाल की शिक्षा पर अच्छा ध्यान दिया था, उन्हें दिगम्बर जैन मुनिराज की सेवा में भेज दिया था और सकल जैन-शास्त्र तथा भक्तामर मन्त्र यन्त्र का खूब अध्ययन कराया था।

एक समय अजमेरके समीपवर्त्ती राज्य वासपुर के नरेश ने पत्र द्वारा सूचना दी कि जोगिनपुर का बादशाह सुल्तान आप पर चढ़ाई किया चाहता है आप शीघ्र ही युद्ध की तैयारी करें। यह समाचार बांच कर राजा उदयपाल बड़े ही क्रोधित हुए और राज-सभामें घोषणा की कि, क्या अपने यहां कोई ऐसा शूरवीर है जो सुल्तानशाह को जीवित पकड़ लावे ? यह सुन कर राजकुमार रणपाल ने भुजा उठा कर उत्तर दिया कि इस सहज कामके लिये आपका यह दास तत्पर है। प्रिय रणपाल का ऐसा साहस देख कर अजमेर-नरेश बहुत प्रसन्न हुए और जोगिनपुर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी।

कुमार रणपाल बड़ी भारी तैयारी के साथ सुल्तानशाह पर चढ़ाई की और दोनों तरफ की सेना का घोर संग्राम हुआ। अन्त मे शाह सुल्तानने कुँवर रणपाल को पकड़ लिया और बंदीगृह में डाल दिया। जब दो दिन और दो रात बीत गये तब तीसरी रात्रि को कुँवर रणपाल ने 'आपादकण्ठ आदि ४६ वां भक्तामर काव्य का स्मरण किया तब तत्काल ही देवी प्रगट हो गई और बन्धन खुल गये। फिर क्या था ? सबेरा होते ही कुमार रणपाल दरबार मे जा पहुँचे।

उन्हें दरबार में आया देख शाह सुल्तानने जेल दारोगा और सिपाहियों को खूब डाट सुनाई और पूछा कि इन्हें किसने छोड़ दिया है और किसके हुकुम से छोड़ा है? उन्होंने विस्मित होकर उत्तर दिया जहांपनाह! यह तो कोई चमत्कारी दीखता है, नहीं तो किसकी ताकत है, जो हुजुर की परवानगी के बिना बाहिर कदम रख सके। तब सुल्तानने स्वयम् अपने हाथ से कुमार रणपाल को खूब कस कर बांधा और जेलखाने में सख्ती से बन्द कर दिया।

जब रात्रिके १२ बजे का घण्टा बजा कि रणपालने पुनः मन्त्र का स्मरण किया, जिससे सब बन्धन खुल गये। वे एक पलङ्ग पर बैठ गये और दो देवियां दासियों की नाईं उनकी सेवा करने लगी। यह हाल सिपाहियोंने सुल्तानशाहको एक झरोखेमें से साफ दिखा दिया। तब तो यह बहुत घबराया और उन्हें राज्य-सभामें बुलायो और उनकी बहुत सेवा सुश्रूषा की। निदान बारम्बार क्षमा प्रार्थना करके बड़े सम्मानके साथ उन्हें अजमेरमें पहुंचा दिया। कुमार रणपाल ने अजमेर पहुंच कर सब वृत्तान्त पिता को सुनाया, जिसे सुन कर उन्हें पहिले तो विषाद और पीछे हर्ष हुआ। उन्होंने पवित्र जैन-धर्म की बड़ी प्रशंसा की और अपना श्रद्धान और भी दृढ़ किया।

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥ ४७ ॥

जो बुद्धिमान इस पुस्तक को पढे हैं, होके विभीत उनसे भय भाग जाता।
दावाग्नि-सिन्धु अहिका, रण-रोग का त्यो पञ्चास्यमत्तगजका सब बन्धनोका ॥ ४७ ॥

भावार्थ—हे प्रभु ! जो विद्वान मनुष्य आपके इस स्तोत्र को अध्ययन करता है उसके मत्त हाथी, सिंह अग्नि, सर्प, सग्राम, समुद्र, महोदर रोग और बन्धन आदिसे उत्पन्न हुआ भय मानो डर कर ही शीघ्र नष्ट हो जाता है।

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-

ॐ अर्हं णमो वड्ढमाणाणं।

ॐ	न	मो	भ

४७ऋद्धि—ॐ ह्री णमो अर्हं वड्ढमाणाणं।

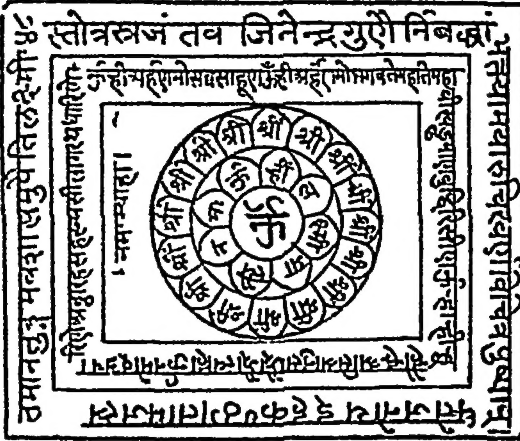
मन्त्र—ॐ नमो ह्रा ह्री ह्रू ह्र क्षय श्री ह्री फट्स्वाहा।

विधि—१०८ बार मन्त्र को आराधना करशत्रुपर चढ़ाई करनेवाले को विजयलक्ष्मीप्राप्त होती है। शत्रुवशहोता है शत्रु के शस्त्रो की धार बेकाम हो जाती है, बन्दूक की गोली बरछीआदिकेघावमहीहोपाते।

स्तोत्रस्रजं तवजिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया विविधवर्ण विचित्रपुष्पाम्
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

तेरे मनोज्ञ गुण से स्तवमालिका ये गूथी प्रभो। विविधवर्ण-सुपुष्पवाली—
मैंने सभक्ति, जन कन्ठ धरे इसे जो सो मानतुङ्ग सम प्राप्त करे सुलक्ष्मी ॥ ४८ ॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र ! मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक अपने गुणों की गूथी हुई सुन्दर अक्षरों की विचित्र पुष्पमालाको जो पुरुष कण्ठमे धारण करता है, उस माननीय पुरुषको धन सम्पत्तिवा स्वर्गमोक्ष आदिलक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती है।



४८ ऋद्धि—ॐ ह्री अर्हं णमो सव्वसाहूणं ।

मन्त्र—महति महावीर वड्ढमाण बुद्धिरिसीणं ॐ ह्रा ह्रीह्र अ सि आ उ सा झ्रौं झ्रौं स्वाहा ।

ॐ नमो बमचारिणे अट्ठारह सहस्स सीलांगरथ धारणे नम स्वाहा

विधि—४१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपने से और यन्त्र पास रखनेसे मनोवांछित कार्य की सिद्धि होती है और जिसे अपने आधीन करना हो, उसका नाम चिन्तवन करने से वह अपने वश होता है ।

श्रीमहामुनि मानतुङ्ग स्वामी की कथा

चौपाई—सो आरतीसम जानी तेह, मानतुङ्ग मुनि की भई जेह ।

सब मो रचित पीठिका कही, कथा आदि अन्त गहगहीं ॥ १ ॥

काव्य सितालिस अडतालीस, सोई मन्त्र जपे मुनि ईस ।

तिन प्रसाद सब बन्धन खुले, नाना विधि के सङ्कट टले ॥ २ ॥

भोज सभा जीती सक जाय, श्रीजिनवर के मन्त्र सहाय ।

ते ही जुगल मन्त्र प्रधान, सो तुम जपौ भव्य गुण खान ॥ ३ ।

अथ कवि प्रार्थना

जेसी भाव ग्रन्थ मे लह्यो, सो भावार्थ निकारौ यह्यो ।

भूल-चूक मेरी जो होय, ताहि सुधारो भविजन लोय ॥ १ ॥

जरूरी सूचना—ऊपर लिखी विधियों मे से जिस विधि में वस्त्र, आसन और माला का प्रकार नहीं बतलाया है उसे नीचे की भांति समझें—

'वशीकरण'—मन्त्र के साधने में वस्त्र, माला और आसन पीला लेना चाहिये ।

'मारण'—मे वस्त्र, आसन और माला काली चाहिये।

'लक्ष्मी-प्राप्ति'—के मन्त्र-साधन में माला मोती की और वस्त्र सफेद चाहिये।

'मोहन'—मे माला मूगा की और वस्त्र लाल चाहिये।

'आकर्षण'—मे वस्त्र हरा और माला हरी लेना चाहिये।

जिस विधि मे दिशा न बताई गई हो, उसका विधान करते समय मुख पूरब को करके बैठे।

यन्त्र भोजपत्र पर अनार की कलम द्वारा केशरसे लिखना चाहिए।

- सम्पादक

स्व० कविवर पण्डित विनोदीलालजी का परिचय

चौपाई—जाके राज परम सुख पाय, करी कथा हम जिन गुण गाय।
साहजादपुर शहर मझार, रहे सदा तिनके आधार ॥१॥
काष्टा सङ्घ आदि जिन तनों, माथुर गच्छ उजागर बनों।
पुष्कर गन-गन गण मे सार, जैन-धर्म को परम सिङ्गार ॥२॥
कुमर सेन मुनि के आम्नाय, प्रगटौ श्रावक वर्न सहाय।
वैश्य वश मे उद्यत महा, जैन-धर्म करुणामय लहा ॥३॥
ता परसाद महा गम्भीर, अगरवाल गुण अङ्क सुधीर।
अगर गोत्र उत्तम गुणसार, अष्टादश गोतम सरदार ॥४॥
अखन तृल हे मेरी अह्न अणख मोहि लगे ज्यों शल्य।
मिथ्यामत को नाशन हार प्रगटौ कुलकौ परम सिङ्गार ॥५॥
मण्डन को परपोता भलौ, पारस पोता को जस चलौ।
दरिगह मलको सुत गुणधाम, 'लाल विनोदी' मेरो नाम ॥६॥
सम्वत् सत्रह सौ सैंताल, श्रावण सुदि द्वितिया रविवार।
शुभ दिन कथा सपूरण करी, प्रथम जिनेन्द्र तनी गुण भरी ॥७॥